ओछे और तुच्छ समझवाले जान कर उनके संग से नफ़रत करेंगे ॥

७—फिर इन जीवों को सच्चे सतसंग में लगाने की मौज नहीं है, क्योंकि वे सतसंग में विघ्न डालते हैं और उनके संग से सच्चे परमार्थियों का किसी क़दर अकाज होता है ॥

८—जो सच्चे परमार्थी जीव हैं, उनको संत सतगुरु या साधगुरु ज़रूर मदद देते हैं। और जो वे उनका बचन मान कर सतसंग और अंतर अभ्यास बराबर करे जावेंगे, तो ऐसे जीवों को थोड़ी-बहुत पहिचान भी पूरे गुरु की आहिस्ता-आहिस्ता आती जावेगी, पर जब तक कि अन्तर में सफ़ाई अच्छी तरह न होवेगी और सच्चे मालिक का सच्चा प्रेम थोड़ा-बहुत मन में नहीं आवेगा, तब तक यह पहिचान पक्की नहीं होवेगी और न हर वक़्त क़ायम रहेगी ॥

९—अंतर की सफ़ाई से मतलब यह है कि मन में चाह संसार के भोग-विलास की और उसकी तृष्णा बाक़ी न रहे ॥

१०—ज़रूरी और वाजिबी चाह वास्ते अपने और अपने कुटुम्ब के पालन और पोषण के, औसत यानी मध्य के दर्जे पर, सच्चे परमार्थ की प्राप्ति में इस क़दर विघ्न नहीं डालती है। पर अनेक तरह की चाहों का मन में भरा रहना, और नित्त उनका बढ़ाना और उन्हीं के पूरा करने

के निमित्त यत्न और मेहनत करते रहना, मन को मैला करता है। और ऐसे मन में सच्ची प्रीति और प्रतीति का, सच्चे मालिक और सच्चे गुरु के चरणों में, ठहरना और उनकी दया की परख और पहिचान का आना मुश्किल है॥

११—जिस किसी के मन में सच्ची चाह भी सच्चे मालिक से मिलने की पैदा हुई है और वह अपनी बड़-भागता यानी सच्चे मालिक की मेहर और दया से संतों के सच्चे सतसंग में भी आ गया, तो भी कुछ अर्से में वह चाह मज़बूत व पक्की होवेगी और संसार की वासना, जो जन्म-जन्म से मन में भरी चली आती है, आहिस्ता-आहिस्ता कम होकर दूर होवेगी। यानी जिस क़दर वह बचन सतसंग में समझ-समझ कर सुनेगा और अंतर में अभ्यास करेगा और रस मिलता जावेगा, उसी क़दर संसार का भाव और प्यार, उसके मन से घटता जावेगा और सच्चे मालिक और सच्चे गुरु के चरणों में उसी क़दर प्रीति और प्रतीति बढ़ती जावेगी। लेकिन यह काम जल्दी का नहीं है। आहिस्ता-आहिस्ता मन की हालत बदलेगी और निर्मल समझ उसकी बुद्धि में धसती जावेगी, और उसके मुवाफ़िक़ रहनी भी सम्हलती जावेगी॥

१२—इस वास्ते, हर एक परमार्थी को मुनासिब है कि पहिले, कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम का भेद और उनके मत का निर्णय करके, यानी उसकी

ऊँचाई और गहराई को समझ लेकर, और उनके अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग की महिमा और बड़ाई अच्छी तरह समझ कर, सतसंग और अभ्यास शुरू करे, और सच्चे मालिक सर्व समर्थ राधास्वामी दयाल का इष्ट बाँध कर, यानी उनके चरणों का निश्चय धारण करके, जिस क़दर हो सके, प्रीति और प्रतीति जगाता और बढ़ाता रहे, और उनके बचन के मुवाफ़िक़ अंतरमुख सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास करता रहे, तो उसके अंतर में आहिस्ता आहिस्ता अनुभव जागेगा और सब परमार्थी बातों और कामों का हाल और उनका फ़ायदा, अंतर के अभ्यास से, उसको आप नज़र आता जावेगा ॥

१३—पहिले इसी क़दर काफ़ी होगा कि सच्चा परमार्थी शख़्स अपने मन में राधास्वामी दयाल कुल मालिक और उनके अभ्यास सुरत शब्द योग की प्रतीति करके काम शुरू करे, और बाहर से, सतसंग शब्द-भेदी और शब्द अभ्यासी गुरु या उनके सतसँगी का करे। और जो किसी का भी संग हर रोज़ न मिले तो संत सतगुरु की बानी का समझ समझ कर थोड़ा बहुत पाठ रोज़मर्रा, और अन्तर में अभ्यास सुरत-शब्द का, करता रहे। कोई दिन में उसको हाल सच्चाई और बड़ाई अपने उपदेशक और सच्चे मार्ग सुरत-शब्द का मालूम होता जावेगा, और अंतर में राधास्वामी दयाल की दया से, परचे भी मिलते जावेंगे कि उससे थोड़ी-बहुत पहिचान सच्चे गुरु की होती जावेगी। इसी तरह कमाई करते करते प्रेम भी

जागेगा और प्रतीति भी बढ़ती जावेगी, और गुरु की क़दर और शब्द की ताक़त भी मालूम होती जावेगी, और राधास्वामी दयाल की दया की परख अपने अंतर में, और उनकी रक्षा और सम्हाल की, अंतर और बाहर, ख़बर पड़ती जावेगी ॥

१४—जिस क़दर ऊपर लिखी हुई हालत पैदा होती जावे, उसी क़दर प्रीति गुरु के चरणों में बढ़ाता जावे, और उनके दर्शन और सेवा और सतसंग से फ़ायदा उठाता जावे। पर जब तक अंतर में परचे न मिलें और अभ्यास का रस और आनन्द न आवे और थोड़ा-थोड़ा बढ़ता न जावे, और दया और रक्षा परख में न आवे, तब तक राधास्वामी दयाल कुल मालिक के चरणों में, जो घट घट में अंग संग हर एक अभ्यासी के मौजूद हैं, प्रीति और प्रतीति धर कर, उनकी दया और मेहर के आसरे, अभ्यास करे जावे, और गुरू यानी अपने उपदेशक को अपने से बड़ा और अपना हितकारी समझ कर, जब-जब मौक़ा होवे, या जब जब बन सके, उनका सतसँग करता रहे, और अपने संशय और भ्रम और बिपरजय, उनकी मदद से, दूर करता रहे और राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाता रहे ॥

१५—संसारी और संसारी गुरु, निंदा से डरते रहते हैं कि कहीं उनके सेवक उनसे फिर न जावें और आइन्दा को सेवकों की तादाद बढ़ाने में कसर न पड़े। पर सच्चे और पूरे गुरु जान-बूझ कर अपनी निंदा कराते हैं कि

जिससे संसारी जीव उनके सतसंग में न आवें और सिर्फ़ सच्चे परमार्थी, जो कि उस निंदा को सच्चे परमार्थ का सबूत समझ कर ज़्यादा शौक़ के साथ लगेंगे, उनके सतसंग में शामिल होवें ॥

१६—सच्चे गुरु यह अभिलाषा नहीं रखते हैं कि हमारे सतसंग में भीड़-भाड़ होवे और नाम मशहूर होवे, बल्कि वे यह चाहते हैं कि चाहे थोड़े ही जीव आवें पर वे सच्चे परमार्थी होवें। और ब-सबब निंदा के, आम जीव आप ही उनके सतसँग से दूर रहते हैं और सँसार की निंदा के डर से उनके पास आने से डरते हैं ॥

१७—सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि ख़ूब समझ-समझ कर, और अपने मन में निर्णय और जाँच करके, जो जो बचन सुने, उनकी प्रतीति करता जावे और जिस क़दर अपने अँतर में क़ैफ़ियत देखे और रस लेवे, उसके मुवाफ़िक़ प्रीति बढ़ाता जावे। दूसरों के कहने और सुनने से जिस क़दर प्रीति और प्रतीति आवेगी, उसका पूरा भरोसा नहीं हो सकता है, क्योंकि तक़लीफ़ और निंदकों के ज़ोर के वक़्त ऐसी प्रीति और प्रतीति जल्द डिगमिग हो जावेगी, और निश्चय क़ायम नहीं रहेगा ॥

१८—मन का स्वभाव है कि ज़रा सी तक़लीफ़ या संसार के पदार्थ की हानि में या कोई उल्टा-सीधा बचन परमार्थ के विरोधियों का सुनकर, जल्द कच्चा होकर, अपने निश्चय से डिग जाता है और गुरु की तरफ़ अनेक तरह के भ्रम उठाता है। इस वास्ते मुनासिब है कि

जब तक पूरा-पूरा निश्चय उनकी तरफ़ न आवे, तब तक उनके साथ साध-भाव, यानी जैसा कि अपने से बढ़कर साधना करने वाले के साथ बरता जाता है, बरताव करे, और संत सतगुरु का भाव न लावे। यह भाव राधास्वामी दयाल के चरणों में, जो कुल्ल मालिक हैं, (और वे सब नाम, यानी संत सतगुरु और गुरु, उन्हीं के हैं) बढ़ाता और पकाता रहे, और उन्हीं को कुल्ल का कर्ता और धर्ता मानता रहे और हर दम उनकी दया और मेहर माँगता रहे। वे अपनी कृपा से ऐसे सच्चे अभ्यासी की हालत आप दिन-दिन बदलते जावेंगे, और जिस क़दर उसको, उनके चरणों में और गुरु और साध के संग प्रेम सहित बर्ताव करना चाहिये, कराते जावेंगे, और आहिस्ता आहिस्ता उसके अंतर की दृष्टि खोलते जावेंगे, यानी अनुभव जगा कर समझ-बूझ बढ़ाते जावेंगे। तब राधास्वामी दयाल और गुरु की गति की पूरी-पूरी समझ उसको आप आती जावेगी और उस वक़्त में जैसा भाव चाहिये, वैसा राधा-स्वामी दयाल और गुरु के साथ सच्चे तौर पर बर्त सकेगा॥

बचन चौंतीसवाँ

जीवों पर सच्चे मालिक की दया का हाल, और वर्णन उनकी ग़फ़लत और बे-परवाही का, उसकी तरफ़ से, और मुनासिब और लाज़िम होना हर एक जीव पर, उस दया की परख करके, उससे

संत सतगुरु के बचन के मुवाफ़िक कमाई करके, अपने सच्चे उद्धार का फ़ायदा हासिल करना

१—सच्चे मालिक ने अपनी दया से जीव के गुज़ारे के लिये इस लोक में उसको अपने औज़ार बख़्शे हैं कि जिनके वसीले से वह अपनी रोटी और इन्द्रियों के भोग का सामान पैदा करके रस और आनन्द ले सके, जैसे दसों इन्द्रियाँ और चार अंतःकरण ॥

२—इन्द्रियों की दो क़िस्में हैं। एक, ज्ञान इन्द्रियाँ, जैसे—आँख, कान, नाक ज़बान और त्वचा यानी छूने वाली ताक़त, बदन की चमड़ी में, और दूसरी, कर्म इन्द्रियाँ, जैसे—हाथ, पाँव, ज़बान, पेशाब और पाख़ाना की इन्द्रियाँ, और चार अंतःकरण—मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार हैं।

३—इन चौदह औज़ारों के वसीले से आदमी अनेक तरह के नये-नये काम करता है और नई-नई चीज़ें और विद्या की पोथियाँ बनाता है और मेहनत और मज़दूरी और हुनर के काम और लिखना-पढ़ना और बन्दोबस्त दुनिया का करता है, और इस तौर से धन पैदा करके अपने खाने-पीने और पहनने और रस और स्वाद की चीज़ों का भोग करने का बन्दोबस्त करता है।

४—अब ख़्याल करो कि जिस मालिक ने ये सब औज़ार और समझ और ताक़त उन औज़ारों के काम में लाने की बख़्शी है, किस क़दर इस आदमी को उसकी

शुक्र-गुज़ारी और सेवा, जान और दिल से करनी चाहिये ?

५—वह सच्चा मालिक कुल्ल, दयाल और दातार है और सब जीवों पर, चाहे वे समझें या न समझें और उसकी दया और दात का शुक्राना करें या न करें, बराबर दया कर रहा है और सब तरह से उनकी सम्हाल और रक्षा, जैसे-जैसे, जब-जब मुनासिब होती है करता है ॥

६—सिवाय तन में औज़ारों के, उस सच्चे मालिक ने बाहर से भी बहुत सामान आदमी और जानदारों के आराम के लिए जैसे—सूरज और चाँद और पानी और हवा और अग्नि और रोशनी और बिजली वग़ैरा—पैदा किये हैं ॥

७—इस सब दया और दात के एवज़ में वह सच्चा दाता और दयाल मालिक, कि जो सब का सच्चा माता और पिता है, कोई ख़िदमत या सेवा या शुक्र-गुज़ारी का काम या उस शुक्र-गुज़ारी का इज़हार और वर्णन जीवों से नहीं चाहता है, और न इन बातों की उसको परवाह है।

८—पर उन जीवों पर, जिनको उस मालिक ने बुद्धि की ताक़त, निर्णय और भेद करने वाली, और नफ़े और नुक़सान की परख करने वाली, और रचना और उसके सामान को देख कर उसके बनाने और पैदा करने वाले की पहिचान करने वाली बख़्शी है, फ़र्ज़ और लाज़िम है कि वे दरियाफ़्त करें कि उनके जीव यानी रूह का

असली मक़ाम कहाँ है, और वहाँ कैसा आनन्द और सुख है, और इस देश में, जहाँ कि वह तन, मन और इन्द्रियों के साथ संसार में बँध गई है, और उस देश के सुखों में क्या फ़र्क़ है, और उनके सच्चे पिता और माता कुल्ल मालिक का कैसा स्वरूप और धाम है और उस मालिक से मिलने में क्या फ़ायदा, और दूरी में क्या नुक़सान है, और वह दूरी किस तरह दूर हो सकती है, यानी वह रास्ता किस तरक़ीब और किस सवारी से तै करके, सुरत यानी रूह अपने निज घर में पहुँच सकती है ॥

९—और हरचन्द (जोकि) वह सच्चा मालिक जीवों की शुक्र-गुज़ारी और ख़िदमत और सेवा का मोहताज नहीं है, पर जीवों को मुनासिब है कि अपने नफ़े और फ़ायदे के वास्ते ज़रूर शुक्र-गुज़ारी उसकी दया और दात की हमेशा और हरदम करते रहें। जो वे ऐसा करेंगे तो उनके मन में उस सच्चे मालिक का प्यार और भाव क़ायम होगा और बढ़ेता जावेगा और उसके सबब से अंतर में शान्ति और एक तरह की ख़ुशी पैदा होगी कि जो उनकी सुरत यानी रूह को ताक़त देती रहेगी ॥

१०—देखो, दुनिया में जो एक आदमी दूसरे आदमी से किसी तरह का सलूक करता है, या तक़लीफ़ के वक़्त में उस की मदद और ग़म-ख़्वारी करता है, या ज़रूरत के वक़्त में धन देता है, तो वह शख़्स उसका किस क़दर अहसानमँद होता है और तहे-दिल से, यानी अपने अन्तर के अन्तर से, उसको दुआ देता है, और जिस क़दर उससे

बन सके, उसकी सेवा और उसके लड़कों या प्यारों की सेवा करने को तैयार रहता है, और जब मौक़ा पाता है, तब फ़ौरन सेवा करके थोड़ा-बहुत उस अहसान का एवज़ाना (बदला) करके अपने मन में बहुत ख़ुश होता है ॥

११—जो कि सुरत यानी सब जीव उस सच्चे मालिक की अंश हैं और इन में यह स्वभाव और चाल जारी है कि एक दूसरे की तकलीफ़ और सख़्ती में मदद करता है और फिर वह दूसरा उसका अहसान मान कर, एवज़ में प्यार और मुहब्बत और ख़िदमत (सेवा) करता है तो उसी स्वभाव और चाल के मुवाफ़िक़ ज़रूर हर एक आदमी के मन में सच्चे मालिक की दया और दात के एवज़ में उसके चरणों में प्यार और भाव और उनकी सेवा का शौक़ पैदा होना चाहिये और उसका ज़हूर भी अच्छी तरह होना चाहिये। पर आम तौर पर यह बात नज़र नहीं आती, यानी आदमियों में यह चाल मालिक की शुक्र-गुज़ारी की कम देखने में आती है ॥

१२—सबब इसका यह है कि पहले तो वह मालिक किसी को नज़र नहीं आता और न मिलता है, और जहाँ कहीं वह प्रकट यानी ज़ाहिर होता है, वहाँ उसकी पहिचान नहीं आती, और जो उसने इस मामले में हुक्म दिया है, उस से लोग ना-वाक़िफ़ हैं ॥

१३—मालिक ने कहा है कि जहाँ सच्चे प्रेमी और भक्त जन हैं, उनके हृदय में मेरा वासा रहता है। और

कहीं जो मुझको कोई ढूंढ़ना और तलाश करना चाहे, तो मैं नहीं मिलूँगा, पर प्रेमी भक्त के हृदय में बसता हूँ, वहाँ मुझको तलाश करे, और जो सेवा और भाव और प्यार करना होवे, वहाँ उस सच्चे प्रेमी भक्त के साथ बरताव करे, तो वह सब सेवा मेरी है। और जिस क़दर भाव और प्यार कोई करेगा, वह मेरे साथ भाव और प्यार समझा जावेगा और उसका फल मैं दूँगा ॥

१४—दुनिया में भी इस बात का सबूत प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि जो कोई किसी के बालक से प्यार करे, और उसको कुछ खिलावे-पिलावे या पहिनावे, तो उस बालक के माँ-बाप उस शख़्स से बहुत ख़ुश होते हैं और उसकी सेवा का बदला आप देते हैं। इस तरह जो कोई दुखी और निर्धन जीवों की (जो कि सच्चे मालिक के बालक हैं) मदद और उपकार करें, उस से मालिक राज़ी होता है और, और जीव भी उसकी कार्रवाई देख कर राज़ी और ख़ुश होते हैं, और जहाँ तक जिस से बने, मदद भी करते हैं। और जो ऐसा काम निष्काम बन आवे, तो उसके बदले में मालिक प्रेम और भक्ति की बख़्शिश करता है, और नहीं तो इस लोक में या परलोक (स्वर्ग) में सुख देता है। यह तो हाल आम जीवों के साथ उपकार करने का बयान हुआ। और प्रेमी जन जो कि मालिक के निज प्यारे बालक हैं, बल्कि किसी दर्जे में ख़ुद उसी का स्वरूप हैं, उनकी सेवा का फल तो कुछ कहने और

लिखने में नहीं आ सकता। मुक्ति का देना तो ऐसी सेवा के बदले में बहुत ज़रा सा (किनका मात्र) इनाम है। ऐसी निष्काम सेवा के फल में मालिक का दर्शन और निज धाम में बासा मिलता है।

१५—और मालिक ने कहा है कि प्रेमी और भक्त जन मेरी आत्मा यानी मेरी जान हैं, उनकी मार्फ़त जो कोई मुझसे मिलना चाहे मिल सकता है और उनके वसीले से जो कोई मेरी सेवा करना चाहे, वह सेवा मुझ को पहुँच सकती है। ऐसे पूरे प्रेमी और भक्तजन जो कि सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से मिल रहे हैं, वे संत कहलाते हैं। और जो ब्रह्म और पारब्रह्म से मिल रहे हैं, वे साध कहलाते हैं, और जो मिलने का जतन और अभ्यास कर रहे हैं और अभी ब्रह्मपद तक नहीं पहुँचे, वे सतसँगी कहलाते हैं॥

१६—संतजन तो आप ही सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का स्वरूप हैं और साधजन ब्रह्म और पारब्रह्म का स्वरूप हैं और सच्चे सतसंगी, जो अभ्यास में दर्द और शौक़ के साथ लगे हुए हैं, वे सच्चे मालिक के निज प्यारे बाल-बच्चे हैं। जो कोई मालिक के निमित्त इनकी सेवा करेगा और इनके साथ भाव और प्यार करेगा, उससे कुल मालिक प्रसन्न होवेगा और मेहरबान होकर भक्ति यानी प्रेमदान देवेगा कि जिस से वे भी एक दिन साध और संतगति हासिल करके, सच्चे मालिक के दर-

बार में दाख़िल होकर अजर-अमर हो जावेगा और जन्म-मरण से रहित होकर परम आनन्द और महा सुख को, जिसमें कमी व बेशी नहीं होवेगी, प्राप्त होवेगा ॥

१७—बाज़े आदमी ख़्याल करते हैं कि वह मालिक तो चैतन्य और अरूप है, उसको किसी के नफ़े और नुक़सान और आराम और तक़लीफ़ से कुछ वास्ता नहीं है, और न किसी की प्रार्थना और विनती की वहाँ ख़बर होती है और न कोई कारज वह करता है, यानी वह अकर्ता और निरलेप है, इस वास्ते उसकी कोई सेवा और ख़िदमत नहीं हो सकती है ॥

१८—यह ख़्याल इन विद्यावानों और बुद्धिमान लोगों का ग़लत है। सच्चा मालिक अरूप और अकर्ता भी है और स्वरूपवान और कर्ता भी है। जो वह आदि में आप रूप नहीं धरता, तो रचना में कोई रूप प्रकट नहीं होता ॥

१९—अब ख़्याल करो कि आदमी इस लोक की रचना में सब से श्रेष्ठ और उत्तम है और उसको कुल्ल इख़्तियार और हुकूमत इस लोक में दी गई है। उसका जो रूप है, वही रूप या उसका नक्शा या ख़ाका, थोड़ी-बहुत कमी के साथ, सब जानदारों में, जैसे चौपाये और परिन्द और कीड़े-मकोड़े वग़ैरा में बराबर नज़र आता है। जब कि नीचे की रचना में इस आदमी का रूप या उसका नक़्शा या ख़ाका बराबर चला गया है तो अब

दरियाफ़्त करना चाहिये कि आदमी का रूप कहाँ से आया, यानी ऊपर के लोकों की रचना में यही रूप बढ़के दर्जे का ज़रूर होगा, और कोई ऐसा स्थान रचना में ज़रूर है कि जहाँ आदि में आकार स्वरूप मालिक का प्रकट हुआ, और फिर उससे नीचे की रचना में उसी का नक़्शा या ख़ाका दर्जे-ब-दर्जे कमी के साथ बराबर चला आया है ॥

२०—संत सतगुरु जो कुल मालिक के स्वरूप हैं और तमाम रचना के भेद को जानते हैं, फ़रमाते हैं कि प्रथम रूप, रंग और रेखा सत्तलोक में प्रकट हुए, और वहाँ से दर्जे-बदर्जे, जैसे कि रचना नीचे के स्थानों में होती आई, उस रूप का भी उसी के साथ उतार होता चला आया ॥

२१—अब विचारना चाहिये कि जहाँ से आदि ज़हूर स्वरूप का हुआ, वही स्वरूप कुल नीचे की रचना का कर्ता है और वही प्रेम स्वरूप और दयाल स्वरूप है, और जिस अरूप से कि आदि धार आई, वह प्रेम और दयालुता और कुल स्वरूपों का भंडार है। यही स्वरूप उस अरूप को, जो उसका निज रूप और भंडार है, लखावेगा और बग़ैर इस स्वरूप की मदद के, कोई उस अरूप भंडार तक नहीं पहुँच सकता है ॥

२२—इस वास्ते जो कोई उस अरूप से मिलना चाहे उसको चाहिये कि पहले उस आदि स्वरूप की भक्ति करके, वहाँ तक उस रास्ते से, कि जो उस स्वरूप ने संत सतगुरु

रूप धर कर इस संसार में प्रकट किया है, पहुँचे। तब अरूप से मेला होगा और जो ऐसा करेगा, तो जिस जगह कि जीव की पिंड में बैठक है, वहीं बैठा २ चाहे जिस तरह अरूप की महिमा गाया करे और ज़िक्र किया करे और निर्णय और तहक़ीकात करता रहे, पर जब तक कि उस जुगत की, जो कि उस स्वरूप ने आप संत रूप धर कर प्रकट की है, कमाई और अभ्यास नहीं करेगा, तब तक अपनी जगह से नहीं हिलेगा, और इस वास्ते, देह का बंधन उसका कभी नहीं काटा जावेगा, और न जन्म-मरण से रिहाई होवेगी और न अपने निज घर में, यानी सत्तलोक और राधास्वामी पद से दख़ल पावेगा।

२३—इस सबब से कुल विद्यावान और बुद्धिमान लोग ख़ाली रह गये, सिर्फ़ बातें विद्या बुद्धि की बनाते रहे और जो कुछ उन्होंने उस मालिक के रूप या अरूप का निर्णय किया, वह भी सही नहीं हो सकता और न उनको रचना के भेद की सही ख़बर मिली। इस वास्ते, उनके मन और बुद्धि का अँधेरा और भ्रम और सन्देह बिलकुल दूर नहीं हुआ। और इसी सबब से इन लोगों के बचन में आपस में इत्तफ़ाक़ नहीं है। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ कहता है। और दूसरा उसी को रद्द (खंडन) करता है और दूसरी बात बताता है। पर यह सब के सब भूल और भ्रम में पड़े हुए हैं और अक़्ल से अनुमान करके बातें बनाते हैं। सुरत यानी रूह की आँख से तो इन्होंने कुछ देखा नहीं, और संत सतगुरु जो हाल फ़रमाते हैं, वह देखे हुए कहते हैं, और

उनका बचन एक ही है और हमेशा क़ायम है, कोई उसको काट नहीं सकता और न उसमें कमी-बेशी कर सकता है ॥

२४—इस वास्ते सब जीवों को चाहिए कि संत-बचन को मानें और मुवाफ़िक़ उनके हुक्म के, भक्ति करके और जो युक्ति वे बताते हैं, उसकी प्रेम के साथ कमाई करके, जो रास्ता कि उन्होंने बताया है, उसी रास्ते से होकर, पहले सत्तलोक में पहुँच कर दर्शन सत्तपुरुष का करें और वहाँ से सत्तपुरुष की मदद लेकर राधास्वामी पद में जो कुल मालिक और सब का निज भंडार है, पहुँचें ॥

२५—बाज़े आदमी कहते हैं कि देहधारी, मालिक का स्वरूप कैसे हो सकता है, वह तो बे-हद और अनन्त और अपार है और देहदारी का स्वरूप हददार है। यह बात भी निहायत नादानी यानी अनजानताई की है, क्योंकि सब कहते हैं कि मालिक सर्व-व्यापक है यानी सब जगह है। तो जो वह सब जगह है तो आदमी में भी ज़रूर मौजूद है, पर किसी को नज़र नहीं आता। जो कोई संतों की युक्ति की कमाई करके अपने अंतर में मथन करेगा उसको मालिक का रूप ज़रूर नज़र आना चाहिए, क्योंकि वह आवरणों यानी पर्दों से ढका हुआ है। जब अभ्यास करके सब आवरण दूर किये जावें, तब उस मालिक का जलवा और जमाल नज़र आना चाहिए। फिर किसी को इस भेद की ख़बर नहीं है। इस सबब से वे अपनी तुच्छ बुद्धि से, जो निहायत अनजान है, ऐसी उलटी समझ निकालते हैं ॥

२६—उस अपार और अनन्त रूप मालिक का हर जगह और देहधारी स्वरूप में मौजूद होना, इस दृष्टांत से साफ़ तौर पर समझ में आ सकता है। जैसे कि हवा या आकाश हर घर में मौजूद है और उस घर की लम्बाई और चौड़ाई के मुवाफ़िक़ हददार मालूम होता है, पर वह कभी हिस्से और टुकड़े नहीं हुआ, बाहर के मंडल से जो निहायत वसीअ है, हमेशा मिला हुआ है और दर्जे-ब-दर्जे ऊँचे की तरफ़ लतीफ़ और सूक्ष्म होता चला गया है। और यह हाल उस मकान के दर्जे या खनों से जो पाँच या सात होवें, मालूम हो सकता है। सब से ऊपर के दर्जे की हवा या आकाश निहायत सूक्ष्म और साफ़ होता है और हर दर्जे की हवा और आकाश बाहर के मंडल के उसी दर्जे या तह से मिले हुए हैं, फिर जो युक्ति के साथ नीचे के दर्जे या खन की हवा मथन करके ऊपर चढ़ाई जावे तो वह बिल्कुल साफ़ और निर्मल और सूक्ष्म होकर अपने मंडल के साथ मिल जावेगी, और वहाँ पर, न वह मकान के अन्दर में कही जा सकती है और न बाहर। और कोई हद उसकी नहीं है यानी अन्दर और बाहर एक ही है और मुवाफ़िक़ अपने मंडल के अपार और बे-हद है। इसी तरह मालिक सब जगह और सब देहों में बग़ैर टुकड़े और हिस्से होने के मौजूद है। और जितने दर्जे कि उस चैतन्य में कहे जा सकते हैं, वे ब-सबब माया की मिलौनी के हुए हैं और माया भी किसी मक़ाम पर पैदा हुई है। निर्मल चैतन्य देश में, जो संतों

के सच्चे मालिक का देश है, उस माया का नाम और निशान भी नहीं है। यह, सब दर्जे, देह धारी के स्वरूप में सूक्ष्म रीति से मौजूद हैं और हर एक दर्जे का चैतन्य उसी दर्जे के बाहर के चैतन्य मंडल से मिला हुआ है। जो सुरत-चैतन्य कि उस निर्मल चैतन्य से धार रूप होकर पिंड में उतर कर ठहरी है, उस निर्मल चैतन्य देश के बासी और भेदी संत सतगुरु से मिल कर, और रास्ते का भेद और जुगत उसी धार पर सवार होकर लौटने की दरियाफ़्त कर के, अभ्यास करे, यानी अपने घट को मथ कर आवरण दूर करती जावे, अथवा उनको छेद कर ऊपर को चढ़ती जावे, तो वह सुरत एक दिन निर्मल चैतन्य देश में पहुँच कर उस अपार और अनंत रूप से मिल कर एक हो जावेगी, और देह की हद किसी तरह से उसके अपार और अनंत रूप में हारिज और मानै नहीं होगी। जैसे कि मकान में ऊँचे दर्जे या खन की हवा का मेल उस मंडल के साथ होने में मकान की रोकने वाली हद्द कोई रोक नहीं कर सकती है, ऐसे ही जिस अभ्यासी सुरत का रास्ता, नीचे से ऊपर तक्र घट में इस तौर से खुल गया, वही सुरत उस अरूपी, अनन्त और अपार रूप से मिल कर एक हो गई, पर बाहरमुख दृष्टि वालों को हद्ददार और देह स्वरूप ही दिखलाई देती रहेगी। पर जो भेदी और अभ्यासी हैं, वे उसके अपार और अनन्त रूप की पहिचान करके उसके साथ मालिक के मुवाफ़िक़ प्रेमपूर्वक बर्ताव करेंगे ॥

२७—मालिक हर एक के घट में ऐसे गुप्त है जैसे फूल में खुशबू, और दूध में घी, पर जब तक कि मथन नहीं किया जावेगा, फूल में से इत्र और दूध में से घी नहीं निकलेगा। सो मथन की तरकीब और घट के भेद की किसी को खबर नहीं है और जो उनको जताया जाता है तो दुनिया और उसके सामान और मन और इन्द्रियों के भोगों की आसक्ती के सबब से नहीं मानते हैं, और हँसी और ठठोली या और वाद-विवाद करके सच्ची बात को उड़ा देते हैं, और अपनी अभाग्यता को दूर नहीं कराना चाहते, बल्कि और उसी को बढ़ाते चले जाते हैं। और इस सबब से जन्म-मरण के चक्कर से नहीं बच सकते और बारम्बार देह धर कर दुख-सुख, ऊँचे-नीचे देश और योनियों में भोगते रहते हैं॥

२८—अब समझना चाहिए कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल का धाम ऊँचे-से-ऊँचे देश में है, और वही सब का मरकज़ यानी मध्य है और आप अनन्त और अपार रूप है। वहीं से आदि में धार प्रकट हुई और नीचे की तरफ़ ठेके २ पर ठहरती हुई और रचना करती हुई चली आई। जो कोई उस धार का भेद जैसा कि संत सतगुरु ने फ़रमाया है, लेकर और उसी धार को पकड़ कर ठेके २ यानी मंज़िल २ पर होता हुआ चढ़ कर चलेगा, वही एक दिन उस निज धाम में पहुँच कर अजर-अमर हो जावेगा, और परम आनन्द को प्राप्त होगा॥

२९—यह सच है कि वह धाम और वह अरुप, चैतन्य और प्रेम का भंडार किसी की सेवा का मुहताज नहीं है। पर जो जीव उस कुल मालिक की दया और दात का विचार करेगा, उसके मन में ज़रूर अभिलाषा दर्शन और सेवा करने की पैदा होगी और प्रेम और भाव उस मालिक के चरणों में जागेगा। फिर उस प्रेम और भाव के प्रकट करने और उस सेवा की अभिलाषा पूरी करने के वास्ते, उस अरूप मालिक का स्वरूपवान रूप संत सतगुरु रूप धारकर, जगत में प्रकट हुआ, और अपने सच्चे प्रेमी और भक्तों की अभिलाषा देह रूप धर कर पूरी करी। और अपनी मेहर और दया दिन २ उन पर ज़्यादा से ज़्यादा करके और भेद अपने निज धाम और उसके रास्ते का देकर और उस आदि धार की डोरी पकड़ के, और चलने की जुगत का अभ्यास कराके, उनको अपने संग, निज घर में पहुँचा कर परम आनन्द को प्राप्त कर दिया॥

३०—सिवाय उस जुगत के जो कि ऊपर लिखी गई और कोई तरकीब या रास्ता निज धाम में पहुँचने का नहीं है, क्योंकि वह सच्चा मालिक आप प्रेम का भंडार है और जीव यानी सुरत भी प्रेम स्वरूप है। पर इसका प्रेम उल्टा होकर संसार और उसके भोगों की चाह में लग गया, जिसको मोह और माया का जाल कहते हैं। इस वास्ते जब तक कि प्रेम अंग लेकर जीव, उस आदि धार को जो कि प्रेम की धार है, पकड़ कर नहीं चलेगा, तब तक रास्ता तै नहीं होगा। और यह प्रेम इस देह और इस लोक में सेवा

और भाव सहित संत सतगुरु और साधगुरु और सच्चे प्रेमी सतसंगियों के संग से पैदा होगा। और सुरत-शब्द योग की कमाई से, जिसको प्रेम-योग कहना चाहिए, वह प्रेम दिन-दिन बढ़ता जावेगा, और एक दिन निज घर में पहुँचा कर छोड़ेगा। और जिस क़दर उस तरफ़ सुरत की चाल चलती जावेगी, दुनिया और उसके सामान का मोह आप ही दिन-दिन कम होता जावेगा। जो कोई बड़भागी जीव हैं, वे इस बचन को मानेंगे और उससे पूरा-पूरा फ़ायदा उठावेंगे, यानी अपना सच्चा और पूरा उद्धार संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की मेहर से करावेंगे। और जिनका भाग जागनहार नहीं है, वे इस बचन को नहीं मानेंगे और इस वास्ते माया-और काल की रचना में पड़े रहेंगे, और देह और संसार के दुख सुख और बारम्बार जन्म-मरण की तकलीफ़ सहते रहेंगे॥

बचन पैंतीसवाँ

वर्णन हाल सच्चे परमार्थी जीवों का, और दर्जे उनकी प्रीति और प्रतीत के, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और सच्चे गुरु के चरणों में, और यह कि कैसे यह प्रीति और प्रतीत दिन-दिन बढ़ती जावे

१—सच्चा परमार्थी वह है कि जिसके मन में सच्चे मालिक से मिलने और अपने जीव का सच्चा और पूरा कल्याण करने की चाह ज़बर है, और संसार के पदार्थ और

भोगों की चाहें थोड़ी और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ हैं और फिर उनमें भी उसके मन का बंधन बहुत कम है, और धन, संतान और कुटुम्ब परिवार में भी बहुत आसक्ति और गिरफ़्तारी नहीं है ॥

२—ऐसे परमार्थी जीवों के मन में थोड़ी-बहुत तड़प और बेकली लगी रहती है कि कैसे और कब सच्चे मालिक का दीदार मिलेगा, और जो उसका भेद और रास्ता बताने वाले हैं यानी संत सतगुरु अथवा साधगुरु कैसे जल्दी से मिलें कि रास्ता चलने का काम जल्दी से जारी हो जावे।

३—ऐसे परमार्थी जीवों को जो कोई सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा सुनावे और उनके धाम का भेद और उनके मिलने की जुगत लखावे, तो वे निहायत अहसानमंद और मगन हो जाते हैं और उसका संग ज़्यादा से ज़्यादा करना चाहते हैं, और जो जुगत वास्ते हासिल होने इस मतलब के बताई जावे, उसको बहुत शौक़ के साथ करने को तैयार होते हैं ॥

४—ऐसे सच्चे परमार्थियों को जो भेद और हाल रास्ते का और महिमा सच्चे मालिक की सुनाई जावे, उसको दिल और जान से सुनते हैं, और उसमें कोई तर्क बेजा नहीं उठाते, और न सच्चे मालिक की मौजूदगी में कोई शक लाते हैं, बल्कि रचना और क़ुदरत का कारख़ाना देख कर उनके मन में पहले ही यक़ीन होता है कि ज़रूर इस रचना का कोई सच्चा करतार है, और वह सर्व-समर्थ

और सर्व-ज्ञानी है और अपनी शक्ति के साथ सब जगह मौजूद है ॥

५—ऐसे सच्चे मालिक का भेद और उसके दर्शनों की प्राप्ति की जुगत सुन कर निहायत खुशी उनके दिल में पैदा होती है और हर तरह से उसके मिलने के वास्ते तन, मन, धन लगाने को अपनी बड़भागता समझते हैं ॥

६—ऐसे जीव, जिस वक़्त कि अपने घट में अभ्यास (मुवाफ़िक़ उस युक्ति के जो कि संत सतगुरु बतावें) शुरू करते हैं, तो उनको जल्द परचा भी मिलता है, यानी उनका मन शब्द की धुन सुन कर और स्वरूप का ध्यान करके फ़ौरन थोड़ा-बहुत निश्चल हो जाता है और आनन्द पाता है और दिन-दिन उनका शौक़ बढ़ता जाता है ॥

७—ऐसे अभ्यासी जीव सतगुरु के संग में, उनके दर्शन और बचन के रस में रसीले और मगन होते जाते हैं और अंतर अभ्यास में भजन और ध्यान का रस और आनन्द लेते हैं और दिन-दिन उनके मन में प्रीति और प्रतीति सच्चे मालिक और गुरु के चरणों में बढ़ती जाती है, और उमंग और प्रेम के साथ तन, मन, धन से अंतर और बाहर सेवा करते हैं और जगत का भय और भाव और लज्जा छोड़कर और भ्रम और संशय को दूर हटा कर भक्ति की चाल और रीति में बे-खटके बर्ताव करते हैं। बल्कि अपने प्रेम की उमंग में नई-नई रीति आप निकालते हैं और दुनियादारों की निंदा और स्तुति का ख़्याल नहीं करते, क्योंकि ये उन लोगों को परमार्थ के हाल

और चाल से बिल्कुल बे-ख़बर और नादान देखते हैं। ये जीव उत्तम परमार्थी कहलाते हैं ॥

८—जो जीव कि मध्यम परमार्थी हैं, उनके मन में अपने जीव के कल्याण की चाह भी मज़बूत होती है, पर संसार की सम्हाल और दुनियादारों के नाराज़ न करने का ख़्याल भी बराबर रहता है, और धन, सन्तान और जगत के पदार्थों में भाव और आसक्ति, ब-निस्बत उत्तम परमार्थियों के, ज़्यादा होती है। ये लोग ऐसा चाहते हैं कि परमार्थ सहज-सहज हासिल होता जावे और दुनिया का भी नुक़सान किसी तरह या उसमें बदनामी भी न होवे। पर सच्चे प्रेमियों की हालत और चाल सतसंग में देख कर थोड़ी-बहुत उनके साथ मुवाफ़िक़त करके उसकी पैरवी जिस क़दर बन सके, करते हैं और आहिस्ता आहिस्ता उनको भी थोड़ा-बहुत भजन और ध्यान का रस अभ्यास के समय अंतर में मिलता जाता है, और कभी कभी मालिक की दया का परचा भी देखते हैं। इस तरह सच्चे प्रेमियों की मदद और संत सतगुरु की दया से उनकी भी प्रीति और प्रतीति सच्चे मालिक और गुरु के चरणों में आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ती और पकती जाती है। ये जीव भक्ति और प्रेम की रीति में, जैसा चाहिए जल्दी बरताव नहीं कर सकते, पर आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ा-थोड़ा सच्चे प्रेमियों के साथ उनका भी बरताव उसी मुवाफ़िक़ हो जाता है ॥

९—मध्यम परमार्थी जीवों के मन में जल्दी प्रतीति

सच्चे मालिक और सच्चे परमार्थ की, जैसा कि चाहिये, नहीं आती है। और सबब उसका यह है कि इनका झुकाव संसार और उसके परमार्थी और स्वार्थी व्यवहार की चाल-ढाल की तरफ़ ज़्यादा रहता है और पूरी खोज और तहक़ीक़ात परमार्थ की करने में ये लोग किसी क़दर ढीले रहते हैं और उनकी तवज्जह दुनिया के कामों में ज़्यादा बँटी हुई रहती है। पर, परमार्थ की भी ज़रूरत का इनके मन में थोड़ा-बहुत यक़ीन रहता है और उसके हासिल करने में थोड़ी-बहुत कोशिश जारी रखते हैं॥

१०—तीसरे दर्जे के जीव निकृष्ठ परमार्थी कहलाते हैं। इनके मन में दुनिया और उसके भोगों की चाह ज़बर रहती है और परमार्थ में कहने-सुनने और कुछ देखा-देखी और दबाव के सबब से शामिल होते हैं। सच्चे मालिक की महिमा और सच्चे परमार्थ की बड़ाई, जैसी कि चाहिये, इनके मन में नहीं समाती है, पर दूसरों के आसरे यानी सच्चे परमार्थियों की चाल-ढाल देख कर और उनके बचन सुन कर ये भी थोड़ा-बहुत उनके मुवाफ़िक़ बरताव करने लगते हैं, लेकिन जब कुछ निंदा या बुराई की बात सुनें, तब फ़ौरन परमार्थ के छोड़ने को तैयार होते हैं और दुनियादारों के डर से परमार्थ की महिमा और ज़रूरत का ख़्याल उनके मन में फ़ौरन जाता रहता है॥

११—ऐसे जीवों को सच्ची प्रीति और प्रतीति सच्चे

मालिक और गुरु के चरणों में नहीं आती है, पर जब तक उनके दुनिया के कारोबार उनके मन के मुवाफ़िक़ जारी रहें और कोई उलटे बचन सुना कर उन पर दबाव न डाले, तब तक परमार्थ में थोड़े-बहुत लगे रहते हैं। पर जब कोई दुनिया के कामों में नुकसान आया या तन्दुरुस्ती में ख़लल पैदा हुआ या कोई मतलब उनका मुवाफ़िक़ उनकी चाह के पूरा नहीं हुआ या उनके कुटुम्बी और बिरादरी ने ज़ोर डाला, उस वक़्त उनको सच्चे परमार्थ और सच्चे गुरु और मालिक के चरणों में अभाव आ जाता है और कार्रवाई उसकी बन्द कर देते हैं, यानी अभ्यास भी छोड़ देते हैं, और जो थोड़ा करे भी जावें, तो अभाव के सबब से उनको उसमें रस नहीं आता है और इस वास्ते आहिस्ता २ काम करते जाते हैं और प्रीति और प्रतीति में बड़ा ख़लल पड़ जाता है ॥

१२—ऐसी हालत में जो कोई दुनिया के बड़े आदमी का (जो सतसंग में शामिल है) सहारा मिल जावे, तो अलबत्ता इन जीवों को बहुत मदद हो जाती है और उनकी भक्ति और अभ्यास थोड़ा-बहुत जारी रहता है। इन जीवों का काम संत सतगुरु और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से आहिस्ता २ बनाते जाते हैं, और किसी न किसी तरह का सहारा वक़्त २ पर देकर भक्ति में उनका निर्वाह कराते हैं। और जब कुछ अंतर में रस और आनन्द इन जीवों को मिलने लगता है, और परमार्थ के बचन सतसंग में सुन कर

समझ बढ़ती जाती है, तब ये लोग भी भक्ति में मज़बूत होते जाते हैं और आहिस्ता-आहिस्ता दर्जा उनका बढ़ता जाता है।

१३—चौथे दर्जे के जीव निपट संसारी और भोगी कहलाते हैं। इनके मन में सिवाय दुनिया के भोग-बिलास और धन और मान-बड़ाई के हासिल करने के और कोई चाह ज़बर नहीं है। ये हमेशा परमार्थ की हँसी उड़ाते हैं और परमार्थियों को नादान समझ कर उनके चाल-ढाल की निंदा करते रहते हैं। इनको मालिक का यक़ीन या ख़ौफ़ या प्यार बिल्कुल नहीं होता है, अलबत्ता अपने संसारी फ़ायदे और नामवरी के वास्ते, चाहे जिसको (जब २ ऐसा मौक़ा आन पड़े) पूजने लगते हैं और तन और धन भी ख़र्च करते हैं। पर निर्मल परमार्थी काम इन से बिलकुल नहीं बन सकता है, और न परमार्थ के उपदेश करने वालों या परमार्थ की कमाई करने वालों पर भाव और प्यार आ सकता है। इस वास्ते ये जीव सच्चे मालिक के प्रेम और भक्ति से हमेशा ख़ारिज रहते हैं। इस वास्ते सच्चे परमार्थी जीवों को चाहिये कि वे चाहे जिस दर्जे के होवें (यानी उत्तम, मध्यम या निकृष्ट), ऐसे जीवों के संग और मोहब्बत और सलाह से जिस क़दर बन सके, हमेशा अपना बचाव रक्खें, क्योंकि वे आप सच्ची भक्ति नहीं करते और दूसरों को, जो सच्ची भक्ति करते हैं, उनके काम और इष्ट से हटाने में बड़ी कोशिश करते हैं॥

१४—संत सतगुरु दया करके फ़रमाते हैं कि कुल जीवों को मुनासिब और कर्त्तव्य है कि अपने जीव के फ़ायदे के

वास्ते सच्चे परमार्थी या साधगुरु या संत सतगुरु की खोज करते रहें और जहाँ-कहीं सच्चे परमार्थ की रीति जारी होवे, यानी सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की भक्ति का उपदेश दिया जाता होवे, और भेद रास्ते का और युक्ति उस पर चलने की सुरत-शब्द अभ्यास के साथ बताई जाती होवे, वहाँ जाकर ज़रूर शामिल होवें और कोई दिन सतसंग करके महिमा, सच्चे मालिक और सच्ची भक्ति और सच्चे मार्ग और अभ्यास की, खूब ग़ौर करके सुनें और समझें, और दुनिया के हाल और कारोबार को अच्छी तरह से देखें और विचार करें कि कोई चीज़ यहाँ ठहराऊ नहीं है, और यह देश सुरत यानी रूह के रहने का नहीं है, उसका निज घर माया की हद के पार है और वही निर्मल चैतन्य देश सच्चे मालिक का धाम है ॥

१५—जो ये लोग इस तरह बरताव करेंगे तो आहिस्ता आहिस्ता उनके मन में सच्चे मालिक और उसके सच्चे धाम की थोड़ी-बहुत प्रतीति और शौक़ उसके मिलने का पैदा होगा। और जिस क़दर सच्चे गुरु और सच्चे प्रेमियों का संग होता जावेगा, उसी क़दर यह प्रीति और प्रतीति बढ़ती जावेगी ॥

१६—जब यह प्रीति और प्रतीति किसी क़दर मज़बूत हो जावे, तब मुनासिब है कि मार्ग के भेद और उस पर चलने की युक्ति का उपदेश लेकर, थोड़ा-बहुत अभ्यास अंतर में शुरू करे। तब जिस क़दर मन और सुरत, स्वरूप के ध्यान और शब्द के सुनने में शौक़ के साथ लगेंगे, उसी क़दर अंतर में रस और आनन्द मिलता जावेगा और दिन-

दिन मन निश्चल और चित्त निर्मल होता जावेगा, और गुरु और मालिक के चरणों में उमंग के साथ प्रेम पैदा होता जावेगा, और चरणों में प्रतीति गहरी और मज़बूत होती जावेगी ॥

१७—अब मालूम होवे कि जिस क़दर मन में संसार के भोगों की चाह ज़बर होगी, उसी क़दर संसारी तरंगें हर वक़्त उठती रहेंगी और मन को चंचल और मलीन करती रहेंगी। फिर ऐसे मन में मालिक का भाव और प्यार नहीं ठहर सकता। इस वास्ते, कुल परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि जो वे अपने सच्चे मालिक के चरणों का नित्य आनन्द और रस लेना चाहते हैं, तो दुनिया के भोग और विलास की चाह कम करते जावें, और फ़िज़ूल कामों और भोगों में अपना बरताव घटाते जावें, तो आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन सफ़ाई हो जावेगी और चरणों का प्रेम पैदा होकर बढ़ता जावेगा ॥

१८—दुनियादार लोगों को भी मुनासिब है कि जो सतसंग, सच्चे गुरु और सच्चे परमार्थियों का न कर सकें, तो उनके साथ प्यार और भाव रक्खें और जब कभी मौक़ा होवे, तिथि-त्यौहार और कार्य-व्यवहार के दिन दर्शन और कुछ सेवा करते रहें, तो उनके जीव का भी थोड़ा-बहुत गुज़ारा और चौरासी के चक्कर से बचाव हो जावेगा ॥

१९—जो कोई चरणों में प्रीति और प्रतीति पैदा करना, और फिर उनको बढ़ाना चाहे तो उसके वास्ते मुख्य उपाय ये हैं :—

(१) सतसंग में शामिल होकर बचन, चित्त से सुनना और ग़ौर के साथ समझना ॥

(२) राधास्वामी दयाल की सर्व-समर्थता और दयालुता के बचन सुनकर यक़ीन करना और यह कि सिवाय सुरत-शब्द मार्ग के दूसरा सीधा और आसान और पूरा रास्ता सच्चे और पूरे उद्धार के हासिल करने के लिए नहीं है ॥

(३) सुरत-शब्द मार्ग की ऐसी महिमा समझ कर उसके अभ्यास की युक्ति दरियाफ़्त करके कार्र-वाई शुरू करना ।

(४) मन और इन्द्रियों को थोड़ा-बहुत रोक कर स्वरूप के ध्यान और अंतर के शब्द के श्रवण में तवज्जह के साथ अभ्यास करना ॥

(५) सच्चे प्रेमियों से प्रीति-भाव के साथ बरताव करके उनके संग से फ़ायदा उठाना और जो भक्ति की रीति में वे बरताव करें उनका संग देना यानी आप भी थोड़ा-बहुत उसके मुवाफ़िक़ बरतना ॥

(६) राधास्वामी दयाल की बानी का समझ २ कर, और उसके अर्थ को अपने ऊपर घटा कर, थोड़ा-बहुत हर रोज़ पाठ करना ॥

(७) सतसंग के वक़्त सतगुरु के दर्शन, दृष्टि जमा कर, करना और अपने मन और सुरत को ऊँचे मक़ाम पर ठहरा कर बचन सुनना और फिर उनका मनन और विचार करके जो जो बचन

अपने वास्ते मुनासिब और मुफ़ीद मालूम होवें, उनके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करना ॥

(८) तन, मन, धन से अपने प्रेम और उमंग के मुवाफ़िक़ (जो अंतर और बाहर थोड़ा-बहुत रस और आनन्द पाकर पैदा होवे) संत सतगुरु या साध गुरु और प्रेमी जन और शब्द-अभ्यासी साधुओं की सेवा करना ॥

(९) पिछले और हाल के यानी अपने वक़्त के गुरु-भक्तों की चाल को सुन कर और देख कर उसके मुवाफ़िक़ जिस क़दर मुनासिब और फ़ायदेमंद मालूम होवे, पैरवी करना ॥

(१०) अंतर में दिन-रात में कई बार थोड़ी-थोड़ी देर चित्त को चरणों में जोड़ कर चरण-रस लेना और इस अभ्यास को आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाते जाना ॥

(११) नित्त, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की दया और मेहर और सतगुरु की मदद और मेहरबानी का गुण गाते और शुक्राना करते रहना ॥

(१२) जगत के परमार्थ की चाल और कर्म-धर्म में जग जीवों का बरताव देख कर उसको, ब-मुक़ाबले अंतरमुख, ऊँचे और गहरे और सच्चे परमार्थ राधास्वामी मत के, ओछा और पोच समझ कर उस से बचे रहना, और अपने भागों को सराहना और किसी से हुज्जत और तकरार बे-

फ़ायदा न करना और न किसी पर तान मारना ॥

(१३) अपने मन और इन्द्रियों की चाल को निरखते चलना और फ़िज़ूल तरंगों और चाहों को हटाते रहना ॥

(१४) सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया को, अंतर और बाहर, परखते चलना और चरणों में प्रीति-प्रतीति बढ़ाते रहना ॥

(१५) अपनी ना-लायक़ी और निर्बलता की जाँच करके, सर्व-अंग करके, राधास्वामी दयाल को शरण दृढ़ करना और बे-फ़ायदा घबराहट छोड़ कर धीरज के साथ, दुरुस्ती से, अभ्यास में लगे रहना ॥

(१६) सतसंग और अभ्यास के समय दूसरे ख़यालों को जिस क़दर बन सके, मन में न आने देना और जो ऐसे ख़्याल पैदा होवें तो सुमिरन और ध्यान के बल से हटाते रहना ॥

(१७) जिस संग और सुहबत और तमाशे से मन में चंचलता और मलीनता यानी भोगों की चाह पैदा होवे, ऐसे संग और तमाशे वग़ैरा से हमेशा, जहाँ तक बन सके, बचते रहना ॥

(१८) जब कोई संशय या भ्रम या निराशता मन में ज़ाहिर होवे, उसको फ़ौरन अपने सतसंग की समझ के मुवाफ़िक़ विचार करके, या सतगुरु या

प्रेमी सतसंगी के सामने बयान करके, या बानी में से उसी क़िस्म के बचन निकाल कर, ग़ौर के साथ पाठ करके, जिस क़दर जल्दी बन सके, उसको दूर करना कि जिससे प्रीति और प्रतीति और अभ्यास में विघ्न न पड़े ॥

(१६) किसी सतसंगी की चाल-ढाल ना-मुनासिब देख कर, या सतसंग की कोई रीति अपनी समझ के मुवाफ़िक़ फ़िज़ूल जान कर सतगुरु और सत-संग में अभाव न लाना, क्योंकि सतसंग बेड़ा है और इसमें हर क़िस्म के जीव शुद्ध और मैले शामिल होवेंगे, और जो सच्चे होकर लगेंगे, उनकी चाल आहिस्ता-आहिस्ता बदलती जावेगी ॥

(२०) परमार्थी को अपने काम बनाने का मतलब नज़र में रखना चाहिए, और औरों के काम में दख़ल देना अपना अकाज करना है ॥

(२१) जिन सतसंगियों पर अपना भाव होवे, उन से मेल करना मुनासिब है, और जिनकी चाल अपनी तबियत के मुवाफ़िक़ न होवे, उनसे मेल करना ज़रूरी नहीं है। और किसी से ईर्षा या विरोध चित्त में नहीं लाना चाहिए और न किसी पर तान का बचन लगाना चाहिए, क्योंकि इससे अपने प्रेम और भक्ति में बे-फ़ायदा विघ्न होता है, और ऐसे शख़्स अकसर सतसंग और अभ्यास से दूर पड़ जाते हैं ॥

(२२) जहाँ तक बन सके, और जहाँ अपना किसी तरह का ताल्लुक़ न होवे, वहाँ किसी का ऐब या बुराई देख कर उसका दूसरे से ज़िक्र करना या अपने मन में उसका ख़्याल रखना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसी कार्रवाई से उस ऐब या बुराई का असर और नुक़सान ऐब देखने वाले के मन में पैदा होगा, और इसमें बे-मतलब उसका अकाज होता है ॥

(२३) शील और क्षमा को, जहाँ तक बन सके, हर जगह और हमेशा काम में लाना चाहिए, यानी सख़्ती और तकलीफ़ और कड़वे बचन और ताने की बरदाश्त करनी चाहिए, और जल्दी भड़क कर झगड़ा और बखेड़ा पैदा करने और बढ़ाने की आदत छोड़नी चाहिए। यह आदत संसारियों की है कि अपना अहंकार और मान बड़ाई का ख़्याल करके जल्दी लड़ने को तैयार हो जाते हैं, पर परमार्थी को दीनता और ग़रीबी के साथ बरताव करना चाहिए। जो और कोई जगह इसका ख़्याल कम रहे, तो सतसंग में इस बात का ज़रूर लिहाज़ रखना चाहिए कि किसी सतसंगी से झगड़ा और बखेड़ा पैदा न होवे ॥

(२४) संत सतगुरु से रूठना या नाराज़ नहीं होना चाहिए। इस में प्रेम-अंग को बड़ा झकोला

लगता है। जो वे कभी बचन ताड़ना या समझौती का कहें, उसको चित्त देकर सुनना और उसके मुवाफ़िक़, जहाँ तक बन सके, कार्रवाई करनी चाहिए ॥

(२५) जो कोई सतसंगी किसी दूसरे सतसंगी की बुराई या निन्दा करे, तो उसको नहीं सुनना चाहिए, और उसको समझाना चाहिए कि यह आदत निहायत नाक़िस है, बल्कि संसारियों में भी यह आदत बहुत बुरी समझी जाती है। क्योंकि जो कोई एक की बुराई और निंदा करता है, वह इसी तरह सब की बुराई और निंदा करता फिरेगा और अपना भारी अकाज करता है कि उसके मन में सच्चे मालिक और गुरु का प्रेम कभी नहीं ठहरेगा और ऐसा शख़्स दूसरे के प्रेम और भक्ति को भी गदला करता है। परमार्थी को मुनासिब है कि हमेशा सब के गुण देखता रहे और औगुण दृष्टि न लावे, और जो किसी सतसंगी में कोई औगुण नज़र पड़े, तो उसको एकान्त में प्यार से समझा देवे, और जो वह उस औगुण को न छोड़े तो सतगुरु को इत्तला करे। वे जैसा मुनासिब समझेंगे, कार्रवाई करेंगे। पर इसको चाहिए कि फिर उसका ख़्याल अपने मन में न रक्खे ॥

मत देख पराये औगुण ।
क्यों पाप बढ़ावे दिन दिन ॥
मक्खी सम मत कर भिन भिन ।
नहिं खावे चोट तू छिन छिन ॥
देखा कर सब के तू गुण ।
सुख मिले बहुत तोहि पुन पुन ॥

२०—यह सब बातें जो ऊपर लिखी गईं, प्रेम के जगाने वाली और बढ़ाने वाली हैं, और हर एक परमार्थी को मुनासिब है कि जहाँ तक बन सके, उनके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करे। राधास्वामी बड़े दयालु हैं, भूल-चूक हमेशा माफ़ करते हैं। पर जीव को चाहिए कि अपनी हालत और भूल-चूक को निहारता चले और जब-जब कोई कसर पड़े, तब-तब अपने मन में पछतावे और शरमावे और माफ़ी माँगे ॥

२१—जो लोग कि भजन और ध्यान में रस न मिलने की शिकायत करते हैं, उनको चाहिए कि अपने मन और इन्द्रियों की हालत की परख करते रहें, और जो कसर अभ्यास में उनकी तरफ़ से मालूम पड़े, उसके दूर करने में राधास्वामी दयाल को दया का बल लेकर कोशिश करते रहें। जिस क़दर सफ़ाई मन और इन्द्रियों की होगी, और जिस क़दर प्रेम या उमंग या विरह-अंग लेकर वे अभ्यास में लगेंगे, उसी क़दर रस मिलता जावेगा। बे-फ़ायदा घबराहट और जल्दी करना मुनासिब नहीं है। यह काम आहिस्ता-आहिस्ता करने का है, और आहिस्ता-

आहिस्ता सफ़ाई होगी और अंतर में रस और आनन्द मिलता जावेगा ।

बचन छत्तीसवाँ

धर्म और कर्म का बयान

१—धर्म का मतलब उन क़ायदों और दस्तूरों से है कि जिनके मुवाफ़िक़ हर एक आदमी को कर्म और करतूत परमार्थ की करना चाहिए और अपने चाल-चलन और बर्ताव को दुरुस्ती से सम्हालना चाहिए ॥

२—कर्म का मतलब उस क़रतूत से है कि जो मन और इन्द्रियों से ज़ाहिर में बने, चाहे वह परमार्थी होवे या संसारी, और शुभ होवे या अशुभ ॥

३—यह परमार्थी धर्म और कर्म का ज़िक्र किया जाता है ॥

४—जो कोई सच्चा परमार्थी है और सच्चा परमार्थ कमाना चाहता है, उसको मुनासिब है कि सच्चे धर्म और कर्म के मुवाफ़िक़ अपना बर्ताव करे ॥

५—सच्चा धर्म यह है कि अपने सच्चे मालिक और माता-पिता का भेद और पता दरयाफ़्त करके, उसकी भक्ति करे, यानी सच्चे और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति करे, और उनके धाम में पहुँचने और उनके दर्शन करने की युक्ति संत सतगुरु से

हासिल करके, नित्त उसका अभ्यास करे और अपने अभ्यास का फल देखता जावे कि उसके मन और सुरत आहिस्ता-आहिस्ता पिंड देश से थोड़े-बहुत न्यारे होकर ऊँचे की तरफ़, यानी अपने सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम की तरफ़, घट में, चढ़ते और चलते जाते हैं ॥

६—सच्चा कर्म यह है कि जिस करतूत से मन और सुरत की अलेहदगी पिंड देश से, और चढ़ाई पिंड और ब्रह्मांड के पार, संतों के देश की तरफ़ आसान होती जावे, और जिससे दिन-दिन इस काम में मदद मिलती जावे ॥

७—और वह सच्चा कर्म यह है कि :—

(१) नित्त, संत सतगुरु या साध गुरु या प्रेमी अभ्यासी जन का या संत सतगुरु की बानी और बचन का, चित और तवज्जह और शौक के साथ, सतसँग किया जावे ॥ और

(२) तन, मन और धन से, जिस क़दर अपनी ताक़त के मवाफ़िक़ बन सके, संत सतगुरु या साध गुरु या प्रेमी जन की सेवा, उमंग और भाव के साथ, की जावे ॥ और

(३) सच्चे नाम का मन से सुमिरन और सच्चे नामी के स्वरूप का प्रेम और भाव के साथ, जिस रीति से कि संत सतगुरु बतावें, अपने घट में ध्यान किया जावे ॥ और

(४) सच्चे भूखे और प्यासे और नंगे को, बग़ैर ख़याल ज़ात और क़ौम और किसी वास्ते के, अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़, जिस क़दर बन सके, अपने सच्चे मालिक और सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के नाम पर अन्न-दान और जल-दान और वस्त्र-दान दिया जावे और उसमें अपनी नामवरी का ख़्याल बिल्कुल न होवे, और न मँगता से किसी क़िस्म की सेवा या ख़िदमत की, उसके एवज़ में, चाह और आस रक्खी जावे ॥

८—इस तरह पर सच्चे परमार्थी को अपना धर्म और कर्म सम्हालना चाहिये और व्यवहार में दया-भाव और सचौटी के संग, जिस क़दर मुमकिन और मुनासिब होवे, जीवों के साथ बर्ताव करना चाहिये, और अपना चाल-चलन भी इसी तौर पर दुरुस्त करना चाहिये कि मन से और बचन से और काया यानी कर्म से, जहाँ तक हो सके, अपने निज मतलब के वास्ते या मनोरँजन के लिए, किसी जीवधारी को दुख और क्लेश न पहुँचे बल्कि जहाँ तक मुमकिन होवे, सुख और ख़ुशी पहुँचावे और जो ऐसा न कर सके तो दुख भी न पहुँचावे ॥

९—जो तफ़सील कर्म की ऊपर लिखी गई है, इसी को सँतमत के मुवाफ़िक़ शुभ कर्म समझना चाहिए और जो करनी इसके बर-ख़िलाफ़ है, यानी सच्चे मालिक की खोज और उसकी भक्ति न करना, और उसके दर्शनों की

चाह का न होना, और न उसके निमित्त यत्न करना, और न संत सतगुरु और प्रेमी जन को तलाश और उनका संग करना, और न सच्चे ग़रीब और मुहताज को अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़ मदद करना वग़ैरा वग़ैरा, यही अशुभ कर्म है। और इसका फल यह मिलेगा कि सच्चे मालिक से दिन २ दूर होकर जन्म-मरण के साथ चौरासी योनि और नर्कों में दुख-सुख भोगना पड़ेगा ॥

१०—और मतों में जो धर्म और कर्म वर्णन किये हैं, उनका मतलब सच्चे मालिक की प्राप्ति का नहीं है। जो धर्म या क़ायदे वहाँ मुक़र्रर किये हैं, और जो शुभ-कर्म सुख के फल की आशा करके वहाँ कराये जाते हैं, जिस किसी से वे दुरुस्ती से बन आवें तो उनका फ़ायदा यह होगा कि इस लोक में या ऊँचे-नीचे लोकों या योनियों में किसी क़दर सुख मिलेगा, पर जन्म-मरण का चक्कर दूर नहीं होगा, और न सच्चे मालिक का दर्शन और उसके धाम में विश्राम मिलेगा ॥

११—फिर जब कि धर्म और कर्म के बर्ताव में सब जगह थोड़ा या बहुत तन,मन, धन ज़रूर ख़र्च करना पड़ेगा, तो हर एक सच्चे परमार्थी को, चाहे मर्द होवे या औरत, मुनासिब और लाज़िम है कि जहाँ तक हो सके संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ अपने धर्म और कर्म की सम्हाल करें तो उसका बहुत-जल्द जन्म-मरण से छुट-कारा होना मुमकिन है, नहीं तो हमेशा माया के घेर में

यानी काल देश में ऊँची-नीची योनियों में दुख-सुख सहता रहेगा ॥

१२—जो कोई संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ कार्रवाई करेगा, उसको (सिवाय इसके कि एक दिन उसको सच्ची मुक्ति प्राप्त होगी और अजर-अमर देश में आप अमर होकर सदा परम आनन्द को प्राप्त होगा) एक बड़ा फ़ायदा यह हासिल होगा कि दिन दिन उसको थोड़ा-बहुत रस और आनन्द सतसंग और अभ्यास का मिलता जावेगा, और सच्चे मालिक की दया उस पर दिन २ बढ़ती जावेगी और उसके साथ रस और आनन्द भी बढ़ता जावेगा, और संतों के मत के मुवाफ़िक़ धर्म और कर्म यानी भक्ति और प्रेम और अभ्यास और अंतर और बाहर सेवा करने की ताक़त भी बढ़ती जावेगी, और एक दिन सच्चा उद्धार और जन्म-मरण से हमेशा को बचाव हो जावेगा ॥

बचन सैंतीसवाँ

मन और इच्छा का बयान

१—पिंडी-मन और इच्छा, ब्रह्मांडी-मन और माया की (जिनको ब्रह्म और माया और शिव-शक्ति कहते हैं) अंश हैं। इनका असली रुख़ बाहर और नीचे की तरफ़ है और जिस मसाले के ये बने हुए हैं, वह भी तीसरे दर्जे यानी

ब्रह्मांड के नीचे के आकाश का मसाला है। यह मसाला भी ब्रह्मांड के मसाले की निस्बत बहुत स्थूल है, यानी स्थूल माया की मिलोनी उसमें ज़्यादा है और उसके मुख का भी नीचे और बाहर की तरफ़ झुकाव ज़्यादा है, यानी माया के पदार्थों के साथ उसका मेल है और उन्हीं से ये पिंडी मन और उसके औज़ार—इन्द्रियाँ और देह—अपना अहार और ताक़त लेते हैं ॥

२—जब कि इस मन का यह हाल है, तब ज़ाहिर है कि इसका असली झुकाव इन्द्रियों के वसीले से भोगों की तरफ़ बहुत है, पर उसमें चैतन्य-शक्ति, जिससे वह काम ले रहा है, सुरत की धार की है ॥

३—पहले, इस मन से इच्छा उठती है यानी एक क़िस्म की हिलोर पैदा होती है, और जिस क़िस्म की वह इच्छा है यानी जिस इन्द्रिय की भोग की चाह है, उसी इन्द्रिय की तरफ़ पहले मन में हिलोर उठ कर और फिर धार पैदा होकर रवाँ होती है। और जो भोग का पदार्थ सन्मुख है तो उसका वह इन्द्रिय भोग करती है, और जो भोग का पदार्थ मौजूद नहीं है, तो उसकी प्राप्ति के लिए जो यत्न दरकार है, उस यत्न में कारज करने वाली इन्द्रिय के द्वारे लग जाती है।

४—सुरत की शक्ति की धार सिर्फ़ मन तक आती है, और उस चैतन्य को, जो मन-आकाश में है, मदद और ताक़त देती है। फिर वहाँ से मन-आकाश के चैतन्य की धार पैदा होकर इन्द्रिय द्वार पर आती है, और इन्द्रिय

द्वार से जो इस आकाश के चैतन्य की धार है, उससे मिल कर, भोगों और पदार्थों से बाहर जाती है। और इसी तरह मन-आकाश से, मुवाफ़िक़ इच्छा या चाह के, धार पैदा होकर पिंड में इन्द्रिय द्वार और नीचे की तरफ़ जाती है, और अंग-अंग को ताक़त देती है ॥

५—अब समझना चाहिए कि जब कि मनाकाश से धार, मुवाफ़िक़ इच्छा के, पैदा होकर रवाँ होती है, तो पहले सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि अपनी इच्छा की सम्हाल करे, और यह सम्हाल बिना संत सतगुरु या साधगुरु या सच्चे प्रेमीजन के संग और उपदेश के, नहीं हो सकती है ॥

६—संग से मतलब यह है कि संत सतगुरु और साध या प्रेमी जन की रहनी देख कर और उनके संग रह कर उनकी सी रहनी रहना शुरू करे, यानी उनकी चाल के मुवाफ़िक़ यह परमार्थी भी अपनी चाल को बदल कर चलना इख़्तियार करे, तब कोई दिन में, असर उनके उपदेश और बचन और रहनी का, इसके दिल में पैदा होगा, और तब इसका मन, उन की चाल के साथ, ख़ुशी से मुवाफ़िक़त करना शुरू करेगा ॥

७—मालूम होवे कि इच्छा के पैदा होने के तीन सबब हैं। एक, संग, दूसरा, तमाशा और नज़ारा यानी सैर और देखा-भाली, और तीसरा, ज़रूरत और एहतियात ॥

८—अब इन तीनों अस्बाब का मुफ़स्सिल बयान किया जाता है—

(१) पहिला, संग—यह ज़ाहिर है कि जैसा जिस को संग मिलेगा, यानी जिस क़िस्म के आदमियों के साथ उसका मेल या रहना होगा, उसी क़िस्म की बोल-चाल और चाल-ढाल और आदत और स्वभाव और मन की चाहें होवेंगी, यानी जिस बात या चीज़ को वे लोग पसन्द करते होंगे या जो काम वे करते होंगे और जो रीति, रहनी और खाने-पीने और पहिनने-ओढ़ने की जारी होगी, तो संग करने वाले की भी वैसी ही आदत और चाह और पसन्द होगी, और उसी सामान की ख़्वाहिशें उसके मन में भरी रहेंगी, और उनके पूरा करने के लिए जो जो यत्न वे लोग करते होंगे, वह भी करेगा ॥

(२) दूसरा, सैर और देखा--भाली-इस से यह मतलब है कि जिस गाँव या क़स्बे या शहर या देश में वह रहता है, या जहाँ-जहाँ सैर या तमाशे को जाता है, और जो-जो कारख़ाना और सामान, और लोगों की रहनी और समझ-बूझ और चाहें और करतूत वह आँख से देखता है, और जिस-जिस काम और चीज़ की तारीफ़ और बड़ाई सुनता और देखता है, उन्हीं काम और चीज़ों की बड़ाई उसके मन में समाती जाती है, और उसी सामान और

असबाब के हासिल करने की चाह पैदा होती है और उसकी प्राप्ति के लिए जैसी-जैसी करतूत लोगों को करते देखता है, उसी काम के करने की ख़्वाहिश बढ़ती जाती है।

(३) तीसरे, ज़रूरत और एहतियाज—इस से यह मतलब है कि जिन-जिन चीज़ों या सामान को, जैसे खाने और पीने और पहिरने और ओढ़ने की, या और रोज़-मर्रा में बरताव और गुज़ारे के लिए दुनिया में, मुवाफ़िक़ हैसियत और रहनी अपने मेल वालों के, ज़रूरत इसको होवेगी, उन चीज़ों और सामान की चाह मन में ज़रूर उठेगी और उनके हासिल करने के वास्ते जो जो यत्न या करनी आम तौर पर लोगों को करते देखेगा, उसी मुवाफ़िक़ आप भी, चाह उठा कर मेहनत और यत्न करेगा॥

९—इन ऊपर के लिखे हुए तीनों अस्बाब से जो चाह और हालत मन में पैदा होती है, वह इन क़िस्मों में से होगी :—

(१) स्त्री और पुत्र और धन की चाह और मुहब्बत॥

(२) मान-बड़ाई और हुकूमत की चाह और उस में बंधन॥

(३) अहंकार अपनी ज़ात-पाँत और ख़ानदानी बुज़ुर्गी और धन और हुकूमत और बड़ाई का॥

(४) तन, मन और इन्द्रियों के भोग-बिलास और ऐश

और आराम की ख़्वाहिश और उसके प्राप्ति के लिए फ़िक्र और मेहनत ॥

१०—जो कोई समझदार और विचारवान आदमी है, वह दुनिया के कारोबार और जीवों की मौत, और भोगों और पदार्थों की नाशमानता, और लोगों की ख़ुद-मतलबी के साथ मुहब्बत, और दुक्ख और दर्द में धन और मान-बड़ाई और हुकूमत और कुटुम्ब-परिवार से कुछ मदद और सहारे के न मिलने का हाल देख कर, ज़रूर अपने मन में ख़्याल करेगा कि जिस क़दर लोग, मेहनत और यत्न वास्ते पूरा करने और अनेक चाहों के, जो मन में भरी हुई हैं, करते हैं, वे सब, कुछ तो बिलकुल फ़िज़ूल हैं और कुछ ज़रूरी हैं, मगर सच्चे और पूरे सुख का फ़ायदा इनमें बहुत कम है। और जब दुख या दर्द पैदा होवे या मौत आ जावे तो उसका फल एक छिन में जाता रहता है, या कुछ अपने मुफ़ीद-ए-मतलब नहीं होता है। और किसी-किसी दुक्ख का, जैसे भारी रोग और शोक का कोई यत्न और इलाज नहीं है कि जिससे वे दूर हो जावें। और ऐसी हालत में, चाहे सब तरह के समान सुख के हासिल भी हों, वे सब के सब फीके और बेकार हो जाते हैं ॥

११—फिर ऐसे विचारवान के दिल में ज़रूर तलाश इस बात की पैदा होगी कि यह जीव कहाँ से आता है और कहाँ जाता है ? और वहाँ दुख पाता है या सुख ? और दुख के हटाने और सुख की प्राप्ति के वास्ते कौन यत्न

मुनासिब है ? और किस तरह इस दुनिया में बर्ताव या गुज़ारा करना चाहिए कि जिससे दुख कम होवे और सुख ज़्यादा मिले, और आइन्दा को, बाद छोड़ने इस देह के भी सुख मिले, और दुख न होवे ? और यहाँ की ज़िन्दगी में जो मेहनत और मशक़्क़त करनी पड़ती है और अनेक तरह की फ़िक्र और चिन्ता घेरे रहती है, उस से थोड़ा-बहुत बचाव किस तरह से होवे ? और ऐसी कौन सी तद्-बीर है कि जिस से मौत का दुख कम व्यापे या बिल्कुल न व्यापे ?

१२—ऐसे सोच-विचार की हालत में, जिस जीव को भाग से संतों का या उनके प्रेमियों का संग मिल जावे, तो उनके बचन, चित्त से सुन कर, सब संदेह और भ्रम इसके आहिस्ता-आहिस्ता दूर हो जावें, और अपने सच्चे मालिक और निज घर का पता और भेद और युक्ति उसके प्राप्ति की मिल जावे, और दुक्खों से बचने और परम आनन्द के हासिल करने का भी यत्न इसकी समझ में आ जावे। फिर जिस क़दर यह शख़्स उनका तन-मन से संग करेगा और उनके बचन और उपदेश के मुवा-फ़िक़ कार्रवाई करेगा, उसी क़दर दिन-दिन उसको अपने अंतर में फ़ायदा मालूम होता जावेगा ॥

१३—अब ऐसे शख़्स को मुनासिब और लाज़िम होगा कि संत सतगुरु और साध और प्रेमी-जन का संग करके, अपनी पिछली चाल-ढाल और रहनी और चाहों को,

जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, बदलता जावे और संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ सच्चे परमार्थियों की रहनी और बर्ताव इख़्तियार करे। जिस क़दर तन, मन और तवज्जह के साथ यह शख़्स उनका संग करेगा, और जिस क़दर ग़ौर और विचार के साथ प्रेमियों की रहनी और रीति समझ कर और उसके मुवाफ़िक़ कार्रवाई शुरू करेगा, और अपनी पिछली हालत और चाल और स्वभाव और चाहों को निरख-परख कर जिस क़दर उन में फ़िज़ूल और ना-मुनासिब चाहें होवें उनको आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ता जावेगा, और सच्चे मालिक से मिलने और अपने निज घर में पहुँचने का इरादा मज़बूत करके, सचौटी के साथ, जो युक्ति कि संत बतावें, उसके अभ्यास में लगेगा, उसी क़दर उसके मन और इच्छाओं का रंग बदलता जावेगा। और जो झुकाव उसका, दुनिया और उसके भोग-बिलास और पदार्थों को बड़ा समझ कर, बाहर और नीचे की तरफ़ हो रहा है, वह भी बदल कर, ऊपर की तरफ़, यानी सच्चे मालिक के धाम और निज घर की तरफ़ आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता जावेगा। और जिस क़दर मन और सुरत की चढ़ाई ऊँचे को, घट में, होती जावेगी, उसी क़दर मन और इच्छा का ख़मीर यानी मसाला भी निर्मल होता जावेगा। जैसे जिस क़दर नीचे की हवा ऊपर की तरफ़ चढ़ती जाती है, उसी क़दर उसकी कसाफ़त और मलीनता दूर हो कर, शीतलता और ताज़गी बढ़ती जाती है, उसी तरह, एक दिन, उस अभ्यासी की सुरत, तन-मन

और इच्छा और माया के देश से न्यारी होकर, और निर्मल चैतन्य देश में पहुंच कर, अपने सच्चे मालिक का दर्शन पावेगी और अमर-अजर होकर परम आनन्द को प्राप्त होगी, और रोग, शोक और जन्म-मरण के दुख से पूरा छुटकारा हो जावेगा ॥

१४—परमार्थी जीवों को अच्छी तरह समझना चाहिए कि सिवाय संत सतगुरु या प्रेमियों के संग के, जो-जो बातें ऊपर लिखी हैं, वे और किसी तरह से हासिल नहीं हो सकतीं, क्योंकि और मतों में बाहर के कर्म और धर्म का पसारा और विस्तार बहुत किया है, और सच्चे मालिक और उसके निज धाम का पता और भेद साफ़ तौर पर वर्णन नहीं किया है, और युक्ति उसकी प्राप्ति की, ऐसे आसान तौर पर कि जिस में गृहस्थ और विरक्त और औरतें और मर्द, सब कोई बिला दिक़्क़त शामिल हो सकें, बिल्कुल नहीं बताई है। फिर जीव बिचारे हमेशा डावाँडोल रहते हैं और भ्रम और संदेह उनके बिल्कुल दूर नहीं होते, और न सच्चा सुख और आनन्द उनको बाहर की करनी में प्राप्त होता है। और जो किसी मत में अंतर की करनी भी बताई है, वह भी पिंड के अंतर की है, चढ़ाई की, और पिंड के पार जाने की युक्ति उस में बिल्कुल नहीं समझाई है। बल्कि उन मतों में चढ़ने और चलने का ज़िक्र भी बहुत कम है। फिर जीव से यह मलीन देश, जहाँ कि मलीन माया और इच्छा और मलीन-मन दुनिया का

काम दे रहे हैं, कैसे छूटे ? और निर्मल चैतन्य देश में यह जीव कैसे पहुँचे ? और जो दुख-सुख और अनेक तरह की तकलीफ़ें इस मलीन देश में माया की मिलौनी के सबब से पैदा होती हैं और सब जीव उन को सह रहे हैं, उनसे कैसे बचाव होवे ?

१५—इस वास्ते, सच्चे परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि संतों की युक्ति लेकर अपना काम बनाना शुरू करें। पर इस क़दर ख़्याल रक्खें कि जितनी बने और जिस क़दर हो सके, अपने मन और इच्छा की हालत बदलें। और यह हालत, बग़ैर संतों की युक्ति के अभ्यास के, जिससे यह मलीन देश और मलीन-मन और मलीन-माया और इच्छा से दिन २ अलेहदगी होती जावेगी, किसी सूरत में और किसी तरह से हासिल नहीं हो सकती। इस वास्ते, चाहिए कि अभ्यास नित्त होशियारी के साथ करें और अपने मन और इच्छा की हालत परख २ कर संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ सम्हालते और बदलते जावें। इस काम में सुरत-शब्द का अभ्यास उनको मदद देगा, और जो सचौटी के साथ यह अभ्यास शुरू करेंगे और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और उनके सत-संग की, सच्चे मन से शरण लेवेंगे, तो राधास्वामी दयाल कुल मालिक अंतर में दया करते जावेंगे, और अपनी मेहर और दया से अभ्यासी का काम बनाते जावेंगे, यानी दिन २ उसकी तरक़्क़ी होती जावेगी, और उसके साथ अंतर

और बाहर, और व्यवहार और वर्ताव और चाल-ढाल में भी सफ़ाई होती जावेगी, और एक दिन सब काम दुरुस्ती के साथ बन जावेगा, यानी सच्चा और पूरा उद्धार हासिल होगा ॥

१६—संसारी लोगों के संग से मन में मलीन इच्छायें और तरंगें, यानी दुनिया के भोग-बिलास की चाह पैदा हुई थी, सो संत सतगुरु और उनके प्रेमी-जन और उनकी बानी का संग करके यह इच्छा बदलेगी। और जो कोई अपनी इच्छा के बदलने में थोड़ी-बहुत कोशिश नहीं करते जावेंगे, उनको भजन और अभ्यास का भी रस कम आवेगा और राधास्वामी दयाल की दया की भी परख अंतर में नहीं आवेगी, और न उनको अपने मन के विकारों की ख़बर पड़ेगी और न उनके दूर करने का यत्न दुरुस्ती से बन पड़ेगा। फिर ऐसे लोगों की संतमत की प्रतीति का भी पूरा २ भरोसा नहीं हो सकता, और न उनकी प्रीति राधास्वामी दयाल और गुरु के चरणों में बढ़ेगी ॥

बचन अड़तीसवाँ

मन की भूल, भ्रम और ग़फ़लत और बे-परवाही

१—मन में भूल और भ्रम निहायत दर्जे के धसे हुऐ हैं। सबब इसका यह है कि अनेक ख़्याल और अनेक कामों का फ़िक्र और अनेक बातों का बन्दोबस्त, वाजिबी

और जरूरी या फ़िज़ूल, इसने अपने सिर पर ले लिया है और कोई वक़्त ऐसा नहीं होता है कि जो यह मन ख़ाली और चुप बैठे ॥

२—जो किसी वक़्त कोई काम नहीं करता है तो हाल और आइन्दा के दुख-सुख के ख़्यालों में लगा रहता है, और अपनी समझ के मुवाफ़िक़ तरह-तरह की चाहों के पूरा करने की युक्ति और यत्न सोचता रहता है या किन्हीं कामों की दुरुस्ती की आशा बाँध कर उनके सामान और तैयारी या उन के फल के भोगने के ख़्यालों में अपना वक़्त खोता है, और किसी से प्रीति और किसी से बैर-विरोध और किसी से ख़ौफ़-ओ-ख़तर के झगड़ों में, चक्कर खाया करता है, और अपनी पिछली, और हाल और आइन्दा की हालतों की समझ के मुवाफ़िक़ अपनी तरह-तरह की बड़ाई और मान के ख़्याल उठा कर अहंकार बढ़ाता है ॥

३—इन कामों में यह मन हर वक़्त ऐसा लिपटा रहता है कि कभी इसको निःचिंताई और फ़ुर्सत नहीं मिलती। और जिस किसी के पास दुनिया का सामान और धन और कुटुम्ब-परिवार ज़्यादा है, उसी क़दर वह मन और माया के पंजे में ज़्यादा गिरिफ़्तार रहता है ॥

४—अपने मरने का सोच बहुत कम आता है और इस बात का विचार कि बाद मरने के क्या हाल होगा और यह जीव कहाँ जावेगा, कभी मन में नहीं आता है। और जो किसी को मरते देखता है, या किसी की मौत का हाल

सुनता है, तो शायद थोड़ी देर के वास्ते उसका जिक्र, अफसोस या रंज या अचरज के साथ, करता है, और फिर बहुत जल्द उसको भूल जाता है और दूसरे कामों या बातों के ख़यालों में पड़ जाता है ॥

५—सब में बड़े ख़यालात जो मन को घेरे रहते हैं, ये हैं:—

(१) पहले, फ़िक्र धन के कमाने और बढ़ाने का है, जिस तरकीब और तदबीर और मेहनत से हो सके।

(२) दूसरे, अपनी और अपने कुटुम्ब-परिवार की तरक़्क़ी और तन्दुरुस्ती और सलामती का।

(३) तीसरे, ऐश और आराम और मज़े और स्वाद के पदार्थों को हासिल करके उनका भोग करना, उनकी सम्हाल और हिफ़ाज़त (रक्षा) करना।

(४) चौथे, वे काम सोचना और करना कि जिन में मान-बड़ाई और शोहरत (यश) और हुकूमत और इख़्तियारात ज़्यादा हासिल होवें ॥

६—जो ये सब काम थोड़े-बहुत इस जीव की ताक़त के मुवाफ़िक़ मालिक की मौज से दुरुस्त बन जावें, तो फिर और उन्हीं के बढ़ाने की फ़िक्र में और उनकी प्राप्ति के अहंकार में हर वक़्त लिपटा रहता है और नित्त उनका सामान और असबाब बढ़ाता जाता है, चाहे वे मुनासिब और ज़रूरी हैं या नहीं, और जिन लोगों से इन कामों में

मदद मिले या उनके वसीले से यह काम दुरुस्त बन जावें, उन की ख़िदमत और ख़ुशामद में अपना फ़ाजिल वक़्त लगाता रहता है ॥

७—ख़ुलसा यह है कि दुनिया के सब कामों में, यह आदमी तन, मन, और धन और अपना वक़्त लगाने को तैयार रहता है, जो उन में इन चारों पदार्थों की कि जिनका ज़िक्र दफ़ा पाँच में हुआ है, प्राप्त या तरक़्क़ी मुमकिन होवे, यानी दुनिया और उस के भोगों को ही एक बड़ी न्यामत (दुर्लभ पदार्थ) समझ कर उन्हीं की क़दर करता है और उन्हीं में दिल लगाता है। पर . मालिक का भजन और बन्दगी या अपने जीव के चे कल्याण के वास्ते यह शख़्स किसी क़िस्म की तलाश बड़ मेहनत या ख़र्च करने में हमेशा कम-फ़ुरसती का श करके दिल चुराता है। और जो कोई इस काम के रहत उस पर दबाव डाले तो फ़ौरन अपनी बे-प्रतीती मालिक कि तरफ़ से ज़ाहिर करता है, या यह कहने लगता है कि वह मालिक किसी की बंदगी और भजन का मोहताज और ख़्वास्तगार (चाहने वाला) नहीं है, या यह कि इन कामों की कोई ज़रूरत ख़ास मालूम नहीं होती है, या जीव के सच्चे मालिक की अंश और अमर होने की निस्बत अपना शक और शुबहा ज़ाहिर करने को तैयार होता है, या ऐसे सवाल पेश करता है कि जिनके जवाब हर एक आदमी न दे सके, और जिससे परमार्थ के काम करने की ज़रूरत ग़लत

साबित हो जावे, जसे कि यह दुख-सुख की रचना किस ने और क्यों करी ? और उसका क्या फ़ायदा है ? और जो संसार में भोग पैदा किये हैं, तो वे ज़रूर भोगने के वास्ते पैदा हुए हैं, फिर उन भोगों के हासिल करने और भोगने की इल्लत में जीवां को सज़ा या दंड क्यों दिया जाता है ? या ऊँची-नीची योनियों में क्यों भ्रमाया जाता है। और ऐसी रचना कि जस में कोई दुखी और कोई सुखी और कोई अमीर और कोई ग़रीब और मुफ़लिस (कंगाल) है, किस वास्ते और किस क़ायदे से की गई ? और सब एक से क्यों नहीं पैदा किए ? और मालिक जो वह रहीम और दयाल है, तो ऐसी सख़्ती और तकलीफ़ जैसे अकाल और मरी वग़ैरा जीवों पर क्यों रवा रखता है ? और जो वह सर्व समर्थ है तो आप ही हमारे मन को फेर कर हम से परमार्थ की करनी करा लेवे। और फिर इन सवालों के साफ़ और सही जवाब हासिल करने के वास्ते भी कोशिश और तलाश पूरे गुरु की नहीं करता है, क्योंकि ऐसे सवालों का जवाब सिर्फ़ संत या उनके प्रेमी अभ्यासी ही दे सकते हैं और भेष और पंडित की ताक़त नहीं कि वे जवाब माक़ूल देकर सवाल करने वाले की तसल्ली कर देवें ॥

८—यह हालत मन की इस सबब से हो गई कि यह मन और सुरत बहुत अर्से से, बल्कि अनगिनत काल से, अपने निज स्थान से जुदा होकर अनेक जन्मों में संसार और उसके भोग-बिलास में भ्रम रहे हैं और अपने निज घर

की ख़बर और भेद बिल्कुल भूल गये, और भ्रम कर, संसार को अपना देश, और इस देह को अपना रूप, और दुनिया के भोगों को अपना आहार और सुखदाई, और कुटुम्बियों को अपना सच्चा सुखचिंतक और मददगार समझा है, और उन्हीं के वास्ते अपना वक़्त और अपनी चैतन्यता ख़र्च कर रहे हैं। यह बड़ी भूल और ग़फ़लत और नादानी है ॥

६—और जो कोई अब इनको घर का पता बतावे और सच्चे माता-पिता कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का भेद सुनावे, तो उसकी पूरी प्रतीत या बिल्कुल प्रतीत नहीं आती है और सबब उसका यह है कि काल पुरुष ने अपनी कलायें इस दुनिया में भेज कर, यानी पैदा करके, अनेक मत और अनेक चालें जारी करीं, और अनेक इष्ट लोगों को बँधवाये, और इन सब बातों और कामों में मन को, किसी न किसी तरह का भोग और रस दिया, चाहे वह इन्द्रियों का रस है या मान-बड़ाई और पूजा-प्रतिष्ठा का भोग है। इतने पर भी लोग काल पुरुष के हुक्म के मुवाफ़िक़ जो उसने वेद, पुराण, क़ुरान और इंजील (बाइबिल) और अनेक मत की किताबों में जारी किया, नहीं मानते हैं, और न ग़ौर-ओ-फ़िक्र से उन उन किताबों के मतलब को समझते हैं। पर, बाहरी रस्म और रीति और चाल-ढाल में, जो अक्सर करके रोज़गारियों ने चलाई और जिन में मन और इन्द्रियों को सैर और तमाशा और भोगों का रस बराबर मिलता है और अहंकार बढ़ता है, बहुत ख़ुशी

से शामिल होते हैं और अंतर का अभ्यास, जिस में तन, मन और इन्द्रियों को थोड़ा-बहुत रोकना पड़ता है, पसंद नहीं आता। और जो कोई अपने मत के मुवाफ़िक़ उसको करते भी हैं, तो उस में मन नहीं लगाते और ऊपरी तौर पर काम करते हैं। इस सबब से काल मत की हद तक भी कोई बिरले पहुँचे या पहुँचते हैं॥

१०—सिवाय इसके, काल पुरुष ने अपने मतों में जो रास्ता या तरकीब अभ्यास की जारी करी, वह ऐसी कठिन बतलाई कि वह अब न गृहस्थ से बन सकती है और न विरक्त से। और इस में उसका असली मतलब यही था कि कोई भी उसके स्थान तक न पहुँचे। और सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के भेद से तो वह आपही वाक़िफ़ नहीं, तो फिर औरों को क्या समझाता? और जो थोड़ा-सा हाल सत्तलोक तक का उस को मालूम है, उसको उसने पोशीदा (गुप्त) रक्खा और सिर्फ़ अपनी और अपनी अंश और कलाओं यानी औतार और देवताओं वग़ैरा की पूजा का उपदेश आम तौर पर जारी किया, या अपनी कलाओं, पैग़म्तर रूप में भेज कर अपनी और उनकी पूजा और मान्यता समझाई॥

११—यह मन भोगों का लालची है और इन्द्रियों के वसीले से बारम्बार भोगों की तरफ़ दौड़ता है, और जिन ख़्यालों का ऊपर ज़िक्र हुआ है, उन्हीं के चक्करों में अंतर और बाहर भ्रमता रहता है, और सुरत-चैतन्य

की धार को अपनी तरफ़ खींच कर इन्द्रियों के द्वारे संसार में बहाता है, और अपने और सुरत के कल्याण और परमानंद की प्राप्ति के लिये कोई सच्चा यत्न करना नहीं चाहता है, और निहायत दर्जे की बे-परवाही, मौत और दुक्खों की तरफ़ से, जो इसके सिर पर खड़े हुए हैं, ज़ाहिर करता है। और जो परमार्थी काम भी करता है तो झूठे और ओछे परमार्थ की बातें सुन कर उनको जल्दी क़ुबूल कर लेता है, और फिर उनमें भी सच्चा होकर नहीं लगता। और जो संत इसको सच्चे परमार्थ का भेद सुनावें, उसमें यह मन अपने और सुरत के बदलने की तरकीब सुन कर और दुनिया और उसके भोगों की तरफ़ से किसी क़दर हटना मंजूर न करके प्रतीत नहीं लाता और मानना नहीं चाहता है ॥

१२—ऐसी ग़फ़लत और बे-परवाही और नादानी का नतीजा जीवों के हक़ में निहायत नुक़सान-दह और सब दुक्खों का मूल समझ कर, संत सतगुरु दया करके बारम्बार उनको समझाते हैं कि अपने मालिक के चरणों में, जो तुम्हारे घट में हर दम मौजूद और तुम्हारे अंग-संग है, थोड़ी-बहुत प्रीति लाओ और उसके मिलने का यत्न, सुरत-शब्द से अभ्यास से, जिस क़दर बन सके, इस ज़िन्दगी में थोड़े-बहुत शौक़ या प्रेम के साथ करके, जिस रास्ते पर मरने के वक़्त जाना होगा, उसको जीते-जी थोड़ा-बहुत साफ़ करलो, और अपनी अंतर की आँख से देख लो और संतों के बचन के मुताबिक़ और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ संसार में

बर्ताव करो, और ज़्यादा विस्तार उसका, और बहुत फँसाव अपना उस में न करो, तो आहिस्ता आहिस्ता एक दिन अपने निज घर में पहुँच कर परम और अमर आनंद को प्राप्त होगे और जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से बचाव हो जावेगा ॥

१३—इस वास्ते, कुल जीवों को, चाहे मर्द होवें या औरत, मुनासिब और लाज़िम है कि अपनी इस ज़िन्दगी में संत-मत का भेद और उसके अभ्यास की जुगत समझ कर, जिस क़दर बने, कार्रवाई शुरू करें और अपने मन का घाट यानी मक़ाम बदलवावें। तब यह भूल और भ्रम और ग़फ़लत, जिस क़दर अभ्यास और सतसंग बनता जावेगा, दूर होती जावेगी, और जिन ख़्यालों में कि मन भ्रमता रहता है, उनकी आहिस्ता-आहिस्ता कमी और अभाव होता जावेगा, और भोगों की तरफ़ से चित्त हटता जावेगा और होशियारी बढ़ती जावेगी, और अंतर में रस और आनन्द सुरत और शब्द की धार का, ध्यान और भजन के अभ्यास में, मिलता जावेगा। और मन और सुरत उसके आसरे चढ़ते जावेंगे और भूल और भ्रम और दुख-सुख और कर्म के स्थान से हटते जावेंगे। और रफ़्ता-रफ़्ता त्रिकुटी में पहुँच कर मन अपने निज घर में रह जायेगा। और वहाँ से सुरत न्यारी होकर अकेली अपने निज देश में, जो कि सतलोक और राधास्वामी धाम है, पहुँच कर, अमर और परम आनंद को प्राप्त होगी, और तब जन्म-मरण

और देहियों के बंधनों से सच्चा छुटकारा और बचाव हो जावेगा ॥

बचन उन्तालीसवाँ

मन और इन्द्रियों की चाल और उनकी सम्हाल

१—मन और इन्द्रियाँ, अपने स्वभाव के मुवाफ़िक (जो जन्म-जन्म के संसारी बर्ताव से बहुत मज़बूत और पक्का हो गया है) बारम्बार भोगों की तरफ़ दौड़ते हैं यानी पहिले मन से धार उठ कर इन्द्रियों के स्थान पर, और फिर वहाँ से भोगों और पदार्थों की तरफ़ रात और दिन बहती रहती है। सो जब तक धार का रुख़ अन्दर में नीचे और बाहर की तरफ़ है, और उसी तरफ़ की धार रवाँ रहेगी, तब तक ऊँचे की तरफ़ उसका रुख़ यानी मुख नहीं बदल सकता, और न उस तरफ़ को चल सकती है। इस वास्ते राधास्वामी मत के अभ्यासियों को मुनासिब है कि इस धार की सम्हाल रक्खें, यानी चाह भोगों और पदार्थों की किसी क़दर कम उठावें, और जब अभ्यास में बैठें तो उस वक़्त दुनिया और उसके पदार्थों का ख़्याल ज़रूर बन्द करें, और चरणों की तरफ़ मुख रक्खें, तो कुछ ध्यान और भजन का रस आवेगा और नहीं तो, गुनावन यानी ख़्याल के वक़्त ख़र्च हो जावेगा और अभ्यास का फ़ायदा प्राप्त न होगा ॥

२—जब भजन के वक़्त कोई संसारी या भोगों की तरंग उठे, तो अभ्यासी को चाहिये कि उसी वक़्त उसको रोके और जो न रोकी जावे तो उसी वक़्त गुरु-स्वरूप या स्थानीय स्वरूप का ध्यान शुरू कर देवे। इसका असर थोड़ा-बहुत ज़रूर मन और इन्द्रियों पर पहुँचेगा और उनका मुख, स्वरूप या शब्द की तरफ़ आसानी से हो जावेगा, और जब गुनावन यानी ख़्याल हट जावे, तब थोड़ी देर बाद, फिर भजन यानी आवाज़ के सुनने में लग जावे ॥

३—जो ध्यान के वक़्त भी गुनावन दूर न होवे यानी फिर-फिर वही ख़्याल पैदा होवे, तब मुनासिब है कि नाम का सुमिरन भी ध्यान के साथ करे और जो फिर भी ख्याल न हटे, तो जिस शब्द की कोई ख़ास कड़ी या प्रेम की कड़ियाँ, मन को बहुत प्यारी लगती होवें, उनका अंतर में, मन ही मन में, गा कर पाठ करे, और तब अपनी तवज्जह, स्वरूप के ख़्याल पर, पहले स्थान सहसदलकँवल पर जमाये रक्खे। जब मन इस काम में लग जावेगा, तब गुनावन और ख़्याल को छोड़ देगा और मन में थोड़ा-बहुत प्रेम ज़ाहिर होगा और शब्द की भी आवाज़ उस वक़्त साफ़ सुनाई देगी और अभ्यास का थोड़ा-बहुत रस आवेगा ॥

४—मन से एक वक़्त में एक ही काम हो सकता

है। इस वास्ते अभ्यासी को मुनासिब है कि जब भजन में न लगे, तब उसको ध्यान में लगावे, और जो ध्यान में भी अच्छी तरह न लगे और प्रेम की कड़ियाँ गाकर भी ख़्याल को न छोड़े, तो सिर्फ़ सुमिरन करे, इस तरकीब से कि मक़ाम नाफ़ या हृदय से नाम की धुन अंदर ही अंदर या थोड़ी आवाज़ के साथ उठावे, और हृदय और कंठ चक्र के स्थान पर एक २ हिस्सा नाम का उच्चारण करता हुआ, सहसदलकँवल या त्रिकुटी के स्थान में ठहरावे, यानी धुन को ख़त्म करे। और फिर इसी तरह दूसरी दफ़ा नाम का उच्चारण नाफ़ से लेकर सहसदलकँवल तक करे, यानी चार हिस्से करके, एक २ हिस्सा नाम का उच्चारण एक एक चक्र के मक़ाम पर करके आख़िरी हिस्सा सहसदलकँवल में ख़त्म करे, जैसा कि नीचे लिखा है। नाफ़-हृदय-कंठ-सहसदलकँवल

रा धा स्वा मी

और जो हृदय चक्र से उठावे, तो त्रिकुटी में ख़त्म करे—इस तरह हृदय, कंठ, सहसदलकँवल, त्रिकुटी

रा धा स्वा मी

५—सिवाय ध्यान और भजन के वक़्त के, और किसी वक़्त जो मन में हिलोर संसारी तरंग की उठे या तरंग पैदा होवे और वह तरंग मुनासिब नहीं है या ग़ैर-वाजिब और बे-फ़ायदा है, तो मुनासिब है कि उस वक़्त फ़ौरन गुरु स्वरूप या स्थानीय स्वरूप का ख़्याल करे, और अन्तर में

अपनी तवज्जह ऊपर की तरफ़, यानी सहसदलकँवल या त्रिकुटी की तरफ़ फेरे, तो उस वक़्त फ़ौरन वह हिलोर या तरंग बंद हो जावेगी- पर शर्त यह है कि अभ्यासी का प्रेम थोड़ा-बहुत गुरु स्वरूप में होवे, या शब्द में होवे या अंदर में ऊँचे की तरफ़ तवज्जह फेरने में (कोई दिन के अभ्यास की आदत से) रस आता होवे ॥

६—जिस किसी का गुरु स्वरूप में प्यार और भाव कम है या नहीं है और न शब्द में अभी रस आया है, तो उस को चाहिए कि जब कोई नाक़िस तरंग मन में उठे तो उसको अपने भजन और ध्यान की हानि और नर्कों और चौरासी के दुक्खों का डर दिखला कर रोके। जो इस बात की, संतों के बचन के मुवाफ़िक़, थोड़ा-बहुत प्रतीत है, तो भी मन और इन्द्रियाँ, डर के सबब से रुक जावेंगी और तरंग भी हट जावेगी ॥

७—अभ्यासी को मुनासिब है कि अपने मन और उसकी चाल की हर वक़्त निगरानी और चौकीदारी रक्खे कि फ़िज़ूल और ना-मुनासिब जगह न जावे, और न ऐसे कामों का ख़्याल उठावे। तब जो अभ्यास दफ़ा छः में लिखा है उससे बन पड़ेगा, और नहीं तो, उसको ख़बर भी न होगी कि उसके मन और इन्द्रियाँ किन बातों और किन कामों में भ्रम रहे हैं। बल्कि वह उन बातों और कामों का, ख़्याल के साथ, अपने, मन में रस लेवेगा और उस ख़्याल को, जब तक वह अन्दर में

जारी रहेगा और उसका पूरा रस नहीं लेवेगा, नहीं छोड़ेगा। यह हालत कुल संसारी जीवों की है, और जो ऐसी ही परमार्थी जीव की भी हुई, तो उसमें अभी संसारी स्वभाव विशेष है, उसकी परमार्थी कार्रवाई दुरुस्त नहीं कहीं जा सकती है ॥

८—परमार्थ की तरक़्क़ी के वास्ते और अभ्यास में रस मिलने के लिए ज़रूर है कि अभ्यासी अपने मन और इन्द्रियों की चाल पर नज़र रक्खे और जहाँ तक मुमकिन होवे, उनको बाहर की तरफ़, फ़िज़ूल और ना-मुनासिब धार बहाने से रोकता रहे, और जिस क़दर बने, अंतर में ऊँचे की तरफ़ चलने और चढ़ने की आदत डाले, तो कोई दिन के अभ्यास से यह आदत पक्की और मज़बूत होती जावेगी, क्योंकि इन्द्रियों की तरफ़ और संसार में भी सुरत और मन, आदत और अभ्यास करके लगे हैं, और जब दूसरी आदत डाली जावेगी और उस का अभ्यास किया जावेगा, तब इनका मुख ऊपर की तरफ़ आहिस्ता आहिस्ता बदल जावेगा और परमार्थ की तरक़्क़ी मालूम होने लगेगी ॥

९—मन आप भोगों का रसिया है, और इस सबब से इन्द्रियों की तरफ़ धार को बहाता है। और जब समझ और विचार के साथ अपने परमार्थ के नफ़े और फ़ायदे की क़दर जानेगा, तब होशियार हो जावेगा, और पुरानी आदत को आहिस्ता आहिस्ता छोड़ता जावेगा, और चंचलता और मलीनता को कम करता हुआ, स्वरूप के ध्यान में और

शब्द की आवाज़ में, उमंग और प्रेम के साथ लगता जावेगा। इसी तरह एक दिन पूरा काम बन जावेगा ॥

बचन चालीसवाँ

स्वार्थ और परमार्थ, यानी दुनिया और दीन के कामों का बयान

१—स्वार्थ से लोगों ने यह मतलब रक्खा है कि दुनिया के कामों का करना या दुनिया के सुख और सामान की चाह उठाना और उसकी प्राप्ति के निमित संसारी और परमार्थी यत्न करना ॥

२—और परमार्थ से यह ग़रज़ रक्खी है कि मरने के बाद, और लोकों में भारी सुख हासिल करने के वास्ते यत्न या काम करना या अपनी मुक्ति के लिए जो युक्ति और अभ्यास साध और महात्मा-जन बतावें, उसको दुरुस्ती से अंजाम देना, और तन, मन, धन उनकी या मालिक की सेवा में लगाना ॥

३—संत-मत में स्वार्थ और परमार्थ के अर्थ बहुत खोल कर और साफ़ तौर पर किये गये हैं कि जिस में किसी तरह का शक नहीं रहे। फिर मुक्ति की निस्बत भी कहा है कि यह नाम हर एक ने अपने २ मत के बग़ैर मुक़र्रर करने ठेके और ठिकाने के रख लिया है, और उसका पूरा-पूरा हाल वर्णन नहीं किया है जिस से कि साफ़

मालूम पड़े कि सच्ची मुक्ति किसका नाम है। अब इन लफ़्ज़ों के अर्थ जुदा-जुदा कहे जाते हैं ॥

४—स्वार्थ उन कामों का नाम है कि जिनके करने से देही के संग, चाहे किसी क़िस्म की होवे, सूक्ष्म या स्थूल, और इस लोक में या दूसरे लोकों में, आराम मिले और रस और सुख का भोग करे। और इसी आराम और सुख और मज़े की प्राप्ति के लिए चाह उठाना और उस चाह के पूरा होने के वास्ते यत्न दरयाफ़्त करना, या उसमें अभ्यास और कोशिश करना और तन, मन, धन ख़र्च करना, स्वार्थी काम कहलाता है ॥

५—ऊपर की लिखी हुई दफ़ा में सब काम और सब क़िस्म की चाहें शामिल हैं, यानी स्वर्ग और बैकुण्ठ और देवताओं और औतारों के अनेक लोकों में बासा चाहना और वहाँ के या इस लोक के सुखों की आशा धर के यत्न करना। और जो मुक्ति कि सच्ची नहीं है यानी जिस में बहुत काल के पीछे जन्म लेना पड़ेगा, उसके लिए यत्न करना, या उसकी चाह उठाना, वह भी स्वार्थी कामों और चाहों में दाख़िल है ॥

६—इस लोक में कुल बाहरमुखी पूजा, जिसका घट के अन्तर के भेद से सिलसिला नहीं लगा हुआ है और जिससे सच्चा फल और पूर्ण आनन्द और सच्ची मुक्ति किसी सूरत में नहीं हो सकती है, स्वार्थी कामों में दाख़िल है, क्योंकि पहले तो अक्सर करके, यह पूजा दुनिया की चाहें पूरी होने के लिए, या उनके पूर्ण होने पर

करी जाती है, और जो मुक्ति की चाह लेकर यह काम कोई करता है तो वह भ्रम में दाख़िल है, क्योंकि सब मत जो जारी हैं, उनके आचार्यों ने साफ़ लिख दिया है कि जब तक कोई योग-अभ्यास नहीं करेगा या अपने मन और इन्द्रियों का मर्दन नहीं करेगा या जीते-जी मुर्दा न हो जावेगा, तब तक उनको तत्व वस्तु का यानी जिसको उन्होंने मालिक क़रार दिया है, उसका दर्शन नहीं मिलेगा, और पाप-पुण्य और जन्म-मरण के चक्कर से उनका बचाव और छुटकारा नहीं होगा ॥

७—परमार्थ उसको कहते हैं कि जिसमें किसी क़िस्म के माया के मसाले की बनी हुई देही का रस और भोग मंज़ूर नहीं है, और सिर्फ़ निर्मल चैतन्य देश में पहुँच कर अपने सच्चे और परम पिता राधास्वामी दयाल के दर्शन का आनन्द लेने की अभिलाषा ज़बर और मज़बूत और अडिग है, यानी माया देश के, जिसको त्रलोकी कहते हैं, कोई पदार्थ या भोग या आनन्द अभ्यासी को लुभा कर रोक नहीं सकते। आत्मा और परमात्मा या ब्रह्म और पार-ब्रह्म के किसी और स्थान पर अभ्यासी ठहरना नहीं चाहता। उसका सच्चा और पूरा प्रेम राधास्वामी दयाल के चरणों में ऐसे शौक के साथ लगा रहता है कि किसी भी और जगह और किसी और के संग में और कैसे ही सामान के साथ उसके मन में पूरी शान्ति और निःचिंताई नहीं आती, और बेकली और तड़प, दर्शन की, कोई उपाय और यत्न करके नहीं

दूर होती, जब तक कि राधास्वामी दयाल के देश में पहुँच कर उनके चरणों में विश्राम न पावे ॥

८—ऐसी टेक और भक्ति जिस किसी की सच्ची और मज़बूत है, उसी को परम भक्त और प्रेमी कहना चाहिये, और उसी को काल और महाकाल के जाल से सच्ची मुक्ति और सच्चा निर्वार माया और महामाया के बंधनों से हासिल होगा, और वही निज देश में, जो कि प्रेम का महा भंडार है, पहुँच कर अमर और अजर हो जावेगा और महा आनंद को, जो कि सदा एक-रस रहता है, प्राप्त होकर, अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के दर्शनों का परम बिलास करेगा ॥

९—सच्चे परमार्थी और भक्तजन को मुनासिब है कि संतों के मत के मुवाफ़िक़ स्वार्थ और परमार्थ का भेद समझ कर, राधास्वामी दयाल के चरणों का इष्ट धारण करके, सच्चा और पक्का और मज़बूत इरादा उनके धाम में पहुँचने का करके अभ्यास शुरू करें ,और संत सतगुरु और उनके सतसंग की शरण लेकर, जिस क़दर बने, कमाई करते जावें, और अपने मन को माया के पदार्थों से बचाये और हटाये हुए रास्ते तै करते जावें, तो एक दिन राधास्वामी दयाल की दया से निज घर में पहुँच कर अपना कार्य बना लेवेंगे। ऐसे भक्तों की करनी और अभ्यास शुरू से अख़ीर तक सब परमार्थी कामों में दाख़िल है ॥

१०—जितने मत कि संसार में जारी हैं, उनका

सिद्धान्त माया के घेर में है। और इस सबब से उनके बचन और उनकी युक्तियाँ, अभ्यास की, उस हद में खत्म हो जाती हैं। इस वास्ते राधास्वामी दयाल के इष्ट वालों को चाहिये कि उन बचनों और युक्तियों को सुन कर धोखा न खावें और उन मत वालों की बातें सुन कर या उनकी किताबें पढ़ कर भ्रम न जावें और अपना इरादा राधास्वामी देश में पहुँचने का ढीला न करें, नहीं तो रास्ते में किसी न किसी स्थान पर अटक जावेंगे और जन्म-मरण से उनका सच्चा छुटकारा नहीं होगा॥

११—राधास्वामी दयाल अपने सच्चे भक्तों का आप प्यार करते हैं और हर तरह से उनकी सम्हाल और रक्षा करते रहते हैं। और जो वे अपना इरादा मज़बूत रक्खेंगे और राधास्वामी दयाल की दया का भरोसा और यक़ीन करेंगे तो वे हर हालत में उनको आप माया और काल के चक्करों से बचा कर सीधे रास्ते से अपने देश में ले जावेंगे, और अपने दर्शनों का परम आनंद बख़्शेंगें, और रास्ते में कहीं धोखा नहीं खाने देंगे। अभ्यासी भक्त को चाहिए कि प्रीति और प्रतीत उन के चरणों में बढ़ाता जावे और संशय और भ्रम अपने चित्त में न लावे। और जब कभी कोई संशय और भ्रम उठे, उसको सतसंग में फौरन ज़ाहिर करके दूर करवे, और अपने तईं बलहीन और असमार्थ जान कर, जब-तब चरणों में, वास्ते प्राप्ति मेहर और दया और अपनी सम्हाल के, प्रार्थना करता रहे॥

बचन इकतालीसवाँ

मन और सुरत का खिलना और ख़ुश होना और कभी भिचना और दुखी होना, अभ्यास की हालत में

१—जो लोग कि राधास्वामी मत में शामिल होकर सुमिरन और ध्यान और सुरत-शब्द का अभ्यास हर रोज़ नियम से करते हैं, उनको कभी ध्यान में स्वरूप का रस और भोजन में शब्द का आनन्द बराबर, अर्से तक, आता है, और तबीयत मगन और ख़ुश रहती है। और कभी ऐसा होता है कि शब्द साफ़ नहीं मालूम होता है और न उस में मन लगता है, या ध्यान में रस नहीं आता या कम आता है, तो ऐसी हालत में लोग घबरा कर शिकायत करने लगते हैं और अपने चित्त में दुखी या निराश हो जाते हैं और फिर अभ्यास में भी बहुत ढीले और सुस्त हो जाते हैं ॥

२—अब मालूम होना चाहिये कि ये दोनों हालतें सच्चे अभ्यासी को, मौज और दया से, प्राप्त होती हैं। पहली हालत में यानी जब कि ध्यान और भजन में रस और आनन्द मिलता है, ऐन दया और मेहर राधास्वामी दयाल की प्रकट नज़र आती है। पर, दूसरी हालत में जबकि ध्यान और भजन में रस और आनन्द कम मिलता है या एक-दो रोज़ नहीं मिलता है, तब राधास्वामी दयाल की दया प्रकट नहीं मालूम होती, और इस सबब से मन घबरा जाता है, और ख़्याल करता है

कि दया खिंच गई या किसी सबब से नाराज़गी हो गई कि जो आनन्द मिलता था, वह जाता रहा या बंद हो गया ॥

३—अब समझना चाहिये कि दूसरी हालत में भी जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ, दया संग है, यानी ध्यान और भजन में रस न मिलने या कम होने के तीन सबब हो सकते हैं, और वे ये हैं और उनका उपाय और यत्न भी सँग २ लिख जाता है ॥

सबब का बयान

४—पहला सबब यह है कि इत्तिफ़ाक़ से किसी निपट संसारी या निन्दकों का संग होना और उनके बचन, तान और हँसी और परमार्थ के, विरोध या राधास्वामी मत की निंदा के सुन कर मन में भ्रम या रूखा और फीकापन आ गया और अभ्यास के वक़्त वे ही बचन याद आये और उनका असर ऐसा हुआ कि उस वक़्त विरह और प्रेम सूख गया, और जब ऐसा हुआ, तो उसी वक़्त मन और सुरत गिर पड़े और रस जाता रहा ॥

यत्न और इलाज अभ्यासी के हाथ से

५—सबब इसका यह है कि अभी भक्ति ज़रा कच्ची है और सतसंग के वचनों की याद और उनकी समझ भी कम है। नहीं तो, चाहिए था कि संसारी और निन्दकों के बचन का फ़ौरन काटने वाला जवाब देकर उनको चुप कर देता, और जो उन लोगों के सामने बोलने का

मौक़ा नहीं था या उनको जवाब देना मुनासिब न समझा गया, तो चाहिये था कि सतसंग के बचन और परमार्थ में भक्ति की रीति विचार कर, उन बातों के असर को अपने दिल से दूर कर देता और कहने वालों को नादान और विरोधी और अभागी समझता और अपने भागों को सराह कर ज़्यादा तवज्जह से अभ्यास में लगता ॥

इलाज दूसरे के हाथ से, या पोथी के पाठ से

६—जो इस क़दर अपने में ताक़त नहीं पाई गई तो अभ्यासी को मुनासिब है कि इसी क़िस्म के बचन पोथी सार बचन नसर (वार्तिक) और नज़्म (छंद बंद) और प्रेमबानी और प्रेम-पत्र में से निकाल कर, ग़ौर के साथ पढ़े या अपना हाल किसी अपने से बड़े या बराबर के सतसँगी के सामने ज़ाहिर करके उससे अपनी तबियत का इलाज़ करावे, यानी भ्रम और अनसमझता को दूर करावे। पोथियों और सतसंगी के बचनों से ज़रूर मदद मिलेगी और राधास्वामी दयाल की दया से वह भ्रम और नादानी जल्दी दूर हो जावेगी ॥

प्रार्थना करे राधास्वामी दयाल के चरणों में

७—और जो यह न बने तो भजन या ध्यान में ज़ोर लगावे और वास्ते प्राप्ति दया के, प्रार्थना करे। राधास्वामी दयाल अन्तर में समझ और सहारा देवेंगे ॥

दया का वर्णन

८—अब समझो कि ऐसे चक्कर के आने में भी दिया है

कि जो मन में कच्चाई और कसर गुप्त धरी हुई थी, वह इस तौर पर प्रकट होकर उसका इलाज किया जाता है, और फिर आइन्दा को वह कचाई और कसर या तो बिलकुल दूर हो जावेगी या बहुत कम हो जावेगी और उसका इलाज भी मालूम हो जावेगा कि जब-जब वह कसर प्रकट होवे, तब-तब ब-दस्तूर सतसंगी और पोथियों से मदद लेकर उसको काटे और दूर करे ॥

९—दूसरा सबब यह है कि सैर और तमाशा या धनवालों और हाकिमों के संग से कोई २ तरंग मन में, संसार के भोगों या पदार्थों या बड़े ओहदों या नामवरी के कामों की पैदा होवे, और उन पदार्थों या भोगों के न मिलने, या मुश्किल से मिलने के ख़याल से मन सुस्त और उदास हो जावे, और ख़याल करे कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल छिन में जो चाहें सो बख़्श देवें, पर उसको क्यों नहीं देते? या यह कि किसी रोज़ भोगों में मामूल और हद मुक़र्ररा से ज़्यादा, या ना-मुनासिब और बेजा बर्ताव हो जावे या ज़्यादा अभिलाषा और ख़्वाहिश किसी क़िस्म के भोगों की मन में, औरों का हाल सुन कर या पढ़ कर पैदा होवे तो उस वक़्त भी मन सुस्त और दुखी हो जाता है, और ख़्याल करता है कि राधास्वामी दयाल उसके मन और इन्द्रियों की पूरी सम्हाल क्यों नहीं करते, और क्यों उसमें तरंगें उठने देते हैं या भोगों में क्यों उसको बर्तने देते हैं? और इस हालत में भजन और ध्यान का रस और आनन्द बिल्कुल नहीं आता है, और तबियत परेशान हो जाती है ॥

यत्न और इलाज अभ्यासी के हाथ से

१०—ऐसी हालत में अभ्यासी को चाहिए कि संतों के बचन, निस्बत मन और माया और संसार के भोग-बिलास के, यानी चितावनी और मन के स्वभाव और चाल के शब्दों या बचनों का, समझ-समझ कर पाठ करे, और सत-संग के बचन याद करके अपने मन को समझावे कि क्यों फ़िज़ूल और ना-मुनासिब चाहें उठा कर और उनके पूरे होने की ख़्वाहिश राधास्वामी दयाल से करके, नाहक़ उनकी तरफ़ से रूखा और फीका और दुखी और उदास होता है, और अपनी भक्ति और ध्यान और भजन के अभ्यास में विघ्न डालता है, क्योंकि संतों और महात्माओं ने पहले ही यह बात समझाई है कि सच्चे परमार्थी को मालिक से मालिक ही को माँगना चाहिए, यानी वह कुल दातार है, और सर्व-भोग और पदार्थ और हुकूमत और नामवरी उसकी दात हैं। सो दाता से दाता ही को माँगना चाहिए और दात नहीं माँगनी चाहिए, क्योंकि जब दाता दयाल प्रसन्न होगा, तब वह जो दात अपने सच्चे प्रेमी के वास्ते मुनासिब होगी, आप देगा, और जिसमें उसके दुनिया या परमार्थ का नुक़सान नज़र आवेगा, वह दात अपने प्यारे बच्चों को नहीं देगा। इस वास्ते ऐसी दात के न मिलने में कभी उदास या दुखी नहीं होना चाहिए।

यत्न या इलाज दूसरे के हाथ से

११—जो बानी और बचन पढ़ कर, और इस तरह सोच और विचार करके मन न माने, और बार-बार वही चाह

उठावे, या भोगों में या उनके ख़्यालों में भ्रमता रहे, तो मुनासिब है कि सतगुरु या साधगुरु से, और जो उनसे मेला न हो सके तो प्रेमी सतसंगी से, जो अपने से अभ्यास और भक्ति में ज़बर होवें, अपना हाल खोल कर या इशारे में अर्ज़ करे, और फिर जो बचन वे कहें, चित देकर सुने और विचारे के तुच्छ और नाशमान भोगों और पदार्थों के वास्ते अपने भजन और ध्यान के रस और आनन्द को क़ुरबान करना और अपनी सच्ची भक्ति में विघ्न डालना और अपने प्यारे परम पिता राधास्वामी दयाल से विमुख होना, कैसे भारी नुक़सान की बात है, और सच्चे प्रेमियों और सतसंगियों की सभा में किस क़दर शर्म से सिर झुकाना पड़ेगा, और अपनी सुरत के कल्याण और फ़ायदे में आप ही विघ्न डालना किस क़दर पाप कमाना और अपने उद्धार में देरी करना है ॥

प्रार्थना चरणों में राधास्वामी दयाल के

१२—ऐसी समझ लेकर उन नाक़िस और ओछे भोगों की वासना को जल्द दूर करके और अपनी ग़लती और चूक पर शर्मा कर मुआफ़ी के वास्ते चरणों में प्रार्थना करे, और सर्व-अंग करके यानी पूरी तवज्जह के साथ अभ्यास में लगे तो राधास्वामी दयाल की दया से जल्द हालत बदल जावेगी और अन्तर में मामूली रस और आनन्द बल्कि मामूल से ज़्यादा मिलेगा ॥

प्राप्ति दया की

१३—और इस तरह राधास्वामी दयाल की दया की परख होगी कि अपने प्यारे बच्चों की किस तरह सम्हाल करते हैं और उनको, उनके मन की कसर और मलीनता दिखा कर उस विकार को आहिस्ता-आहिस्ता निकालते जाते हैं और समझ बढ़ा कर और सफ़ाई और भक्ति की रीति सिखा कर अंतर में रस और आनन्द बख़्शते हैं ॥

१४—**तीसरा** सबब यह है कि पिछले या इसी जन्म के कर्मों के सबब से कोई बीमारी या और किसी क़िस्म की तकलीफ़ या उपाधि अभ्यासी को पैदा होवे, या जो उसके कुटुम्ब और परिवार या ख़ास रिश्तेदारों में हैं, उनकी तबीयत अपने कर्मों के फल करके ख़राब होवे, या और कोई तकलीफ़ या उपाधि उनको आयद होवे, और ब-सबब उनकी प्रीति और संग रहने के, अभ्यासी के मन पर भी उसका असर पहुँचे, यानी उसको चिन्ता या फ़िक्र पैदा होवे, और उस बीमारी या तकलीफ़ अपनी या अपने कुटुम्बियों की चिन्ता के सबब से मन और सुरत ध्यान और भजन में अच्छी तरह न लगें, तब मन घबरा कर जल्दी पुकार चरणों में करता है। और जो वह मंज़ूर हो गई और बीमारी और तकलीफ़ या उपाधि हट गई तो ख़ुश होकर शुक्राना करता है, और नहीं तो चित दुखा और उदास होकर राधास्वामी दयाल की तरफ़ से रूखा और फीका हो जाता है, और कहता है कि क्यों नहीं जल्दी कर्म काट देते और इस क़दर सहायता क्यों नहीं करते कि जिसमें तबीयत ज़्यादा न घबरावे और अभ्यास

दुरुस्ती से बने जावे, और जो अभी दया नहीं करते तो आइन्दा कर्म कैसे काटे जावेंगे और दुक्खों से कैसे बचाव करेंगे ॥

यत्न और इलाज अभ्यासी के हाथ से

१५—ऐसी हालत में अभ्यासी को चाहिए कि जो तकलीफ़ होवे, उसको धीरज के साथ बर्दाश्त करे, और जो हो सके तो सतसंग की हाज़िरी देवे, और चित से बचन सुने, और जो सतसंग प्राप्त न होवे तो जिस क़दर बन सके, तवज्जह अपनी लेटे हुए, भजन या ध्यान या सुमिरन में लगावे। और जो इन कामों में मन न लगे, यानी तकलीफ़ के सबब से यह अभ्यास न बन सके, तो चित के साथ नाम की धुन, आहिस्ता २ या थोड़ी आवाज़ के साथ, बतौर कड़ी के उच्चारण करे, इस तरह पर :—

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी

या इस तौर पर—

राधास्वामी सतगुरु दयाल।
हे राधास्वामी सतगुरु दयाल ॥

और जो धुन के साथ नाम का उच्चारण भी न कर सके तो पोथी का पाठ करे, या दूसरे से पाठ करा कर तवज्जह के साथ अर्थों पर नज़र रख कर सुने। इन में से जो भी अभ्यास थोड़ा-बहुत बन आवेगा तो ज़रूर तकलीफ़ किसी क़दर कम हो जावेगी, क्योंकि वह तकलीफ़ पिछले नाक़िस कर्मों के सबब से पैदा हुई है। और अब जो पर-

मार्थी करतूत संतां के बचन के मुआफ़िक़ की जावेगी, तो उसका असर पिछले कर्मों के फल को काट देगा ॥

दया और दुआ लेना और दवा करना

१६—सिवाय इसके, अभ्यास को मुनासिब है कि संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया लेवे, और यह अभ्यास या सतसंग और प्रार्थना करके हासिल होगी ॥ और

१७—ग़रीब और मोहताज यानी भूखों की दुआ लेवे, इस तौर पर कि अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ एक या दो या ज़्यादा सच्चे भूखे मर्द या औरत या बच्चों को तलाश करके उनको अपने सामने अच्छा खाना खिलवावे। जैसे वे खाते जावेंगे, उसी क़दर ख़ुश होकर दुआ देते जावेंगे। उनकी दुआ के असर से भी तकलीफ़ किसी क़दर दूर होवेगी और ख़ुशी और ताक़त प्राप्त होगी ॥

१८—डाक्टर या हकीम या वैद की दवा भी राधास्वामी दयाल की मेहर और दया के आसरे करे। इससे भी बीमारी की तकलीफ़ दूर होगी या कम होती जावेगी ॥

राधास्वामी दयाल की दया का वर्णन

१९—जो जीव सच्चे मन से परम पुरुष राधास्वामी दयाल की शरण में आये हैं, उनको जब कभी ऐसी तकलीफ़ या सोच और फ़िक्र पैदा होता है, उस में भी राधास्वामी दयाल की दया संग होती है, यानी जो तकलीफ

पिछले कर्मों के सबब से आती है, उसको वे जपनी दया से सूली का काँटा और मन भर को सेर भर कर देते हैं, और फिर उस हालत में भी रक्षा और सम्हाल अपने जीवों की करते हैं, और उनके परमार्थ की तरक़्क़ी मंज़ूर है यानी मेहर से ऐसे वक़्त पर भजन और ध्यान में ज़्यादा रस देते हैं कि जिसकी मदद से वह तकलीफ़ बहुत कम मालूम होती है या बिल्कुल नहीं मालूम होती है। बल्कि बाज़ वक़्त ऐसी तकलीफ़ या बीमारी की हालत में इस क़दर रस और आनन्द अभ्यास में बख़्शते हैं कि बीमार अपनी बीमारी का जल्दी दूर होना पसंद नहीं करता है। इस वास्ते इस बात का ख़्याल राधास्वामी दयाल की शरण वाले जीवों को हमेशा रखना चाहिए कि उनके कर्म तो राधास्वामी दयाल सहज में काटते जाते हैं, और जो उनके रिश्तेदारों के कर्म-भोग से उनको फ़िक्र और सोच पैदा होता है, उसमें भी मदद फ़रमाते हैं, और जो किसी परमार्थी के रिश्तेदारों को उससे, या उसको उनसे, सच्ची प्रीति है, तो उनके भी कर्मों के कटने में दया के साथ मदद होती है, यानी उनको भी दुख कम होता है और उस दुख में भी अपने परमार्थी रिश्तेदार के दर्शन और बचन से किसी क़दर तकलीफ़ का घटाव और बचाव होता है, और अन्तर में ताक़त और शीतलता प्राप्त होती है॥

२०—सिवाय उन तीन सबब के जिनका हाल ऊपर लिखा गया, एक और ख़ास सबब है कि जिसमें अभ्यासी

को थोड़ी-बहुत बीमारी या रंज ख़ौफ़ या फ़िक्र की वजह से तकलीफ़ होती है ॥ और

२१—वह यह है कि राधास्वामी दयाल, वास्ते घटाने या दूर करने किसी ख़ास विकार, मन और इन्द्रियों के, या ढीला करने कोई बंधन अंतरी या बाहरी के, या निर्मल करने और चढ़ाने मन और सुरत के, या कम करने या ख़ारिज करने किसी माद्दे या मवाद नाक़िस के, कोई ख़ास बीमारी या तकलीफ़ देह में, या रंज, या अपने मन पर ग़ुस्सा, या सोच और फ़िक्र, या ख़ौफ़ दिल में, अपनी मौज से पैदा करके, अपने निज सेवक और सच्चे प्रेमी अभ्यासी की गढ़त फ़रमाते हैं। ऐसी हालत कोई बड़-भागी प्रेमियों को नसीब होती है और उस में उनको ऐसी घबराहट या तकलीफ़ नहीं होती कि निराशा पैदा होवे या अपने भजन और ध्यान की, बैठे बैठे या लेटे-लेटे कार्रवाई न कर सकें और उसमें थोड़ा या बहुत रस न पावें। और जो कभी इस क़दर तकलीफ़ होवे कि ध्यान और भजन न बन सके, तो राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से ऐसे निज प्रेमियों के मन और सुरत को अंतर में आप ताने हुए और खींचे हुए रखते हैं कि वह हालत भजन और ध्यान से ज़्यादा है, क्योंकि उस में मन सिमटा हुआ रहता है और सुरत ऊपर की तरफ़ को खिंची हुई और तनी हुई रहती है कि जिसके सबब से देह को तकलीफ़ बहुत कम मालूम होती है और अंतर में एक तरह का आराम और आनंद बराबर मिलता रहता है ॥

२२—ऐसी मौज की पहिचान हर एक प्रेमी को, वक़्त पैदा होने बीमारी या तकलीफ़ के नहीं हो सकती, लेकिन जो वह अपने हाल और राधास्वामी दयाल की दया की निरख और परख करता रहता है, तो उसको, बाद गुज़र जाने ऐसी हालत के, किसी क़दर पहिचान और समझ इस बात की कि वह हालत मौज और दया से पैदा हुई थी, आ सकती है, और फिर वह इस दया और उसके फ़ायदे को देख कर, राधास्वामी दयाल के चरणों में शुक्र अदा करेगा और उनकी महिमा को, कि किस-किस युक्ति से अपने निज प्रेमियों की गढ़त और सम्हाल फ़रमाते हैं, थोड़ा-बहुत जान कर, अपनी बड़भाग्यता पर ख़ुश होगा कि राधास्वामी दयाल ने उसको अपना दया-पात्र बनाया या बनाते जाते हैं ॥

२३—बानी का पाठ, वास्ते मज़बूती शरण और हासिल होने अन्तरी दया और मदद के, हर हालत में ज़रूर है, और जो ज़रूरत होवे तो अपने से ज़्यादा दर्जे के सतसंगी से, जो क़रीब होवे और उससे आसानी के साथ मेला हो सके, ऐसी हालत का ज़िक्र करके मदद लेना भी मुनासिब है ॥

२४—जिस किसी को सतगुरु का संग प्राप्त है, उसको किसी दूसरे से अपने हाल का कहना ज़रूर न होगा। वह ख़ुद सतगुरु से अपना हाल अर्ज़ करे, तो उनकी मेहर और दया के भरे हुए बचन और नज़र से उसको जल्दी फ़ायदा होवेगा ॥

२५—यहाँ तक उन जीवों की हालत का ज़िक्र हुआ कि जो सच्चे होकर परमार्थ में लगे हैं, और राधास्वामी दयाल की जैसे-तैसे शरण में आकर थोड़ी-बहुत तवज्जह और होशियारी के साथ हर रोज़ नियम से अभ्यास करते हैं, और दुनिया के दुक्ख और चौरासी का डर उनके दिल में थोड़ा-बहुत क़ायम हो गया है। पर जो जीव कि नियम से रोज़मर्रा अभ्यास नहीं करते, यानी जब चाहा तब अभ्यास किया और जब चाहा तब कुछ अर्से के लिए छोड़ दिया, या जिनकी प्रीति और प्रतीत सतगुरु राधास्वामी दयाल के चरणों में अभी साधारण है और दुनिया के भोग और विलास और औज-मौज की चाह मन में ज़बर बसी हुई है, उनको अपने अभ्यास की हालत और दर्जे की ख़बर भी नहीं होती, और वे, भजन और ध्यान के वक़्त अक्सर गुनावन यानी ख़्यालों में बहते रहते हैं और फिर उनको उसकी ख़बर भी नहीं होती, या मालूम होने पर इस क़दर ताक़त नहीं रखते या कोशिश नहीं करते कि गुनावन को दूर करें या थोड़ा-बहुत हटावें, तो ऐसे जीव अभी अपने संसारी कर्मों के चक्कर में पड़े हुए हैं, और अपने वास्ते आप विघ्न और बखेड़े पैदा कर लेते हैं कि जिससे अभ्यास का रस उनको जैसा कि चाहिए, नहीं मिलता। ये निपट कर्म और काल और मन और माया के वश में हैं, और इनकी तरफ़ सतगुरु राधास्वामी दयाल की तवज्जह भी अभी कम है। जो वे कुछ अर्से में समझ-बूझ कर और होशियार होकर अभ्यास और सतसंग करने लगें, तो बेहतर है, नहीं तो जब

मौक़ा होगा और जिस क़दर मुनासिब समझा जावेगा, राधास्वामी दयाल उनकी भी सम्हाल फ़रमावेंगे। पर उनको थोड़ी-बहुत तकलीफ़ होगी, क्योंकि ऐसे जीव बिना थोड़ा-बहुत दुख पाये, और दुनिया के पदार्थों का, अपनी नादानी और बे-परवाही के सबब से, थोड़ा-बहुत नुक़सान कराये होशियार नहीं होते। वे, सतगुरु राधास्वामी दयाल के हुक्म को चित्त से चेत कर नहीं सुनते और नहीं मानते हैं। इस वास्ते, जब उनके सम्हाल की मौज होती है, तब उनके साथ इसी क़िस्म का बर्ताव किया जाता है और तब ही इनको सच्चा होश आता है और आइन्दा को दुरुस्ती के साथ बर्ताव करते हैं यानी दुनिया के कारोबार के साथ सच्चे परमार्थ की कार्रवाई भी थोड़ी-बहुत सचौटी और दुरुस्ती के साथ करने लगते हैं। और फिर उनकी भी हालत बदलती जावेगी और आहिस्ता-आहिस्ता कोई दिन में, वे भी दया-पात्र हो जावेंगे यानी उन पर भी राधास्वामी दयाल की मेहर होती जावेगी और फिर सच्चे प्रेमियों के मुआफ़िक़ उनकी भी रक्षा और सम्हाल शुरू हो जावेगी ॥

२६—अब समझना चाहिए कि यह हालत मन के खिलने और मिंचने की, सब अभ्यासियों पर, दौरे के तौर पर आती रहती है। और यह भी दया का निशान है कि जब २ भजन और ध्यान में बराबर रस मिलता जाता है, तब २ मन मगन रहता है, और जब रस में कुछ कमी हो जाती है या दुरुस्ती के साथ अभ्यास नहीं बन पड़ता है या किसी क़िस्म की तरंगें मन में पैदा होती हैं, जो ज़ाहिरा

विघ्नकारक हैं, तब मन में एक क़िस्म की बेकली और तड़प पैदा होती है, और वास्ते प्राप्ति दया के, वह अभ्यासी बिनती और प्रार्थना करता है, तब फिर थोड़ा-बहुत रस मिलना शुरू हो जाता है। इस में यह फ़ायदा है कि अभ्यासी के चित में हमेशा दीनता बनी रहती है और अपने हाल और मन की चाल को देख कर, अपने अंतर में शर्माता और झुरता रहता है, और अहंकार अपनी बड़ाई और अभ्यास की तरक़्क़ी का, मन में नहीं आता, और विरह वास्ते प्राप्ति ज़्यादा रस और आनंद के जागती रहती है। इसी से तरक़्क़ी अभ्यास की होती रहती है। और जो एक सी हालत रही आवे तो मन अंतर में मगन होकर जिस दर्जे तक कि पहुँचा है, वंही रहा आवेगा और आगे को चाल नहीं चलेगी यानी तरक़्क़ी नहीं होगी ॥

२७—बेकली और तड़प जिस क़दर कि रस मिला है, है, उसको हज़म कराने वाली और आइन्दा को ज़्यादा दया हासिल कराने वाली और आगे को रास्ता चलाने वाली है। जो यह हालत न आवे तो उतने ही रस और आनन्द में मन को शान्ति आ जावे और आगे की तरक़्क़ी बन्द हो जावे। इस वास्ते ऐसी हालत में, अभ्यासी को ज़्यादा घबराना या निराश नहीं होना चाहिए, बल्कि ज़्यादा दया का उमीदवार होकर, ऐसे वक़्त में, जिस क़दर बने, कोशिश और मेहनत वास्ते दुरुस्ती से करने भजन और ध्यान के, करना चाहिए, और मन की बे-फ़ायदा और ना-मुनासिब तरंगों को रोकना और हटाना मुनासिब है ॥

२८—ये तरंगें भी थोड़ी-बहुत जरूर उठेंगी, क्योंकि अभ्यासी जिस क़दर रास्ता तै करता है, उसी क़दर काल और माया से उसकी लड़ाई होती जाती है। और यह दोनों, नई २ तरंगें काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की, जिनकी जड़ असल में त्रिकुटी के मक़ाम पर है, उठा कर, अभ्यासी को गिराना और उसका रास्ता रोकना चाहते हैं। इस वास्ते अभ्यासी को मुनासिब है कि सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर, उन तरंगों को काटता और हटाता जावे और जो भूल-चूक हो जावे या उन तरंगों के साथ लिपट कर गिर जावे या फिसल जावे, तो उसका कुछ अन्देशा नहीं है। चाहिए कि फिर होशियार होकर अपना काम मज़बूती और दुरुस्ती से करे जावे तो राधास्वामी दयाल की दया से आहिस्ता २ इन दोनों के बल को तोड़ता जावेगा, और एक दिन उन पर फ़तह पावेगा ॥

२९—ऐसी हालत के पैदा करने और काल अंग की ताक़त दिखाने में यह मौज है कि अभ्यासी को मालूम हो जावे कि काल और उसके दूत किस क़दर बली हैं, और राधास्वामी दयाल अपनी दया से, किस २ युक्ति से, उनके बल और ताक़त को तुड़वा कर या ढीला करके, अपने सच्चे प्रेमियों की चाल बढ़ाते जाते हैं, और सफ़ाई मन और सुरत की करा कर, ऊँचे देश में बास के लायक़, उनकी गढ़त करा कर, बनाते जाते हैं ॥

३०—जो कोई सतगुरु स्वरूप को अगुवा करके

चलेगा, उसको इस क़िस्म के विघ्न बहुत कम पेश आवेंगे, फिर भी काल और माया थोड़ा-बहुत अपना बल और ज़ोर दिखावेंगे और उस अभ्यासी से आप डरते रहेंगे। फिर राधास्वामी दयाल की दया से सब विघ्न आसानी से कटते और दूर होते जावेंगे और एक दिन रफ़्ता २ वह अभ्यासी इनको जीत कर अपने निज देश में पहुँच जावेगा।

३१—कुल्ल अभ्यासी सतसंगियों को चाहिये कि नीचे के लिखे हुए शब्द के मतलब को समझ कर, जहाँ तक बन सके, उसके साथ, मन से, मुवाफ़िक़त करें, और सतगुरु राधास्वामी दयाल की मौज के अनुसार जिस क़दर हो सके, बर्ताव करें॥

शब्द

गुरू की मौज रहो तुम धार।
गुरू की रज़ा सन्हालो यार॥ १॥
गुरू जो करें सो हित कर जान।
गुरू जो कहें सो चित्त धर मान॥ २॥
शुक्र ही करना समझ विचार।
सुक्ख दुक्ख देंगे हिकमत धार॥ ३॥
ताड़ और मार करें सोइ प्यार।
भोग सब इन्द्री रोग निहार॥ ४॥
कहूँ क्या दम २ शुक्र गुज़ार।
बिना उन और न करने हार॥ ५॥

दुखी चित से न हो दुख लार।
सुखी होना नहीं सुख जार ॥ ६ ॥

विसारो मत उन्हें हर बार।
दुक्ख और सुक्ख रहो उन धार ॥ ७ ॥

गुरू और शब्द यह दोउ मीत।
नहीं कोई और, इन धर चीत ॥ ८ ॥

यही सत पुर्ष यही कर्तार।
लगावें तोहि इक दिन पार ॥ ९ ॥

बिना उन कोई नहीं संसार।
देव मन सूरत उन पर वार ॥ १० ॥

करें वे नित्त तेरी सार।
तेरे तन मन के हैं रखवार ॥ ११ ॥

शुक्र कर राख हिरदे धार।
मिटावें दुक्ख सब ही झार ॥ १२ ॥

करें क्या मन तेरा नाकार।
नहीं तू छोड़ता विष धार ॥ १३ ॥

भोग में गिरे बारम्बार।
न माने कहन उनकी सार ॥ १४ ॥
इसी से मिले तुझ को दण्ड।
नहीं तू मानता मतिमन्द ॥ १५ ॥

सहो अब पड़े जैसी आय।
करो फ़रयाद गुरु से जाय ॥ १६ ॥

पकड़ फिर उनहीं को तू धाय।
करेंगे वोही तेरी सहाय ॥ १७ ॥
बिना उन और नहीं दरबार।
रहो उन चरणों में हुशियार ॥ १८ ॥
गुनह तुम किये दिन और रात।
गुरू की कुछ न मानी बात ॥ १९ ॥
इसी से भोगते दुख घात।
बचावेंगे वही फिर तात ॥ २० ॥
रहो राधास्वामी के तुम साथ।
लगे फिर शब्द अगम तुम हाथ ॥ २१ ॥

बचन बयालीसवाँ

करनी और शरण का वर्णन

१—जो जीव कि सतसँग में आये हैं, यानी जिन्होंने कि राधास्वामी मत को क़ुबूल किया है, उनकी दो क़िस्में हैं ॥

२—एक, करनी वाले, यानी वे कि जिनके मन में शौक़, दर्शन राधास्वामी दयाल के चरण का, तेज़ है, और जीते-जी अंतर में शब्द और स्वरूप का रस और आनन्द लेना चाहते हैं। ऐसे जीव जो कुछ अभ्यास यानी सुमिरन, ध्यान और भजन उनको बताया जावे, उनको नियम से, होशियारी और दुरुस्ती के साथ, रोज़मर्रा दो, तीन या चार

बार करते हैं और अपने मन और इन्द्रियों की रोक और सम्हाल, जिस से कि अभ्यास के वक़्त तरंगों और भोगों के किसी ख़्याल में न भ्रमें, करते रहते हैं, और दुनिया और उसके कारोबार और भोग-बिलास में, ज़रूरत के मुवाफ़िक़, और जहाँ तक बन सके, मुनासिब तौर पर बर्ताव रखते हैं, और धन और पुत्र और नामवरी और तन और मन को सुख और आराम देने की फ़िज़ूल चाहें कम उठाते हैं, और जहाँ तक मुमकिन होवे, सतगुरु राधास्वामी दयाल के बचनों के मुवाफ़िक़, अंतर और बाहर, कार्रवाई करते हैं ॥

३—दूसरे, शरण वाले, यानी वे जीव जो कि सतगुरु राधास्वामी दयाल के चरण और उनके सतसंग में प्रीति और प्रतीत रखते हैं, और राधास्वामी मत के क़ायदे और उसके अभ्यास को, अपनी समझ के मुवाफ़िक़, निर्णय करके, जिस क़दर मामूली तौर पर बन सकता है, अभ्यास भी करते हैं, और राधास्वामी दयाल को सर्व समर्थ और दयाल और दाता जान कर, उनके चरणों की शरण, अपनी प्रीति और प्रतीत के दर्जे के मुवाफ़िक़ लेकर, उनकी दया से अपना उद्धार और काल और कर्म और माया के घेर से निर्वार, दर्जे-ब-दर्जे, जैसे उनकी मौज होवे, चाहते हैं और उनकी दया के भरे हुए बचनों का सहारा और भरोसा रखकर, अपने मन में निश्चिन्त रहते हैं, और इस बात का यक़ीन रखते हैं कि जो राधास्वामी दयाल और उनके सतसंग की शरण आया, उसका उद्धार, वे अपनी दया से आहिस्ता २ ज़रूर फ़रमावेंगे। इन जीवों के मन में ज़्यादा

घबराहट और तड़प, वास्ते अन्तरी दर्शन या विशेष रस और आनन्द भजन और ध्यान के, नहीं है, और इस सबब से वे ज़्यादा कोशिश और मेहनत अभ्यास में नहीं करते हैं ॥

४—पहली क़िस्म के जीवों यानी करनी वालों की हालत हमेशा बदलती रहती है, यानी वे दिन २ अभ्यास में तरक़्क़ी करते रहते हैं। और इसमें कभी उनका मन अंतर में रस और आनन्द पाकर खिलता है, यानी मगन होता है, और कभी जब कुछ रस कम मिलता है, तो भिच जाता है, यानी उदास रहता है। और जो कि वे निरख-परख अपने मन और इन्द्रियों की चाल और राधास्वामी दयाल की दया की, हमेशा करते रहते हैं, इस सबब से भी कभी उनका मन थोड़ा-बहुत सुखी और कभी दुखी होता रहता है और चिंता और फ़िक्र यानी खटक अपने जीव के कल्याण की, हमेशा थोड़ी-बहुत उनको लगी रहती है ॥

५—पर, दूसरी क़िस्म के जीव, यानी शरण वाले, अपने उद्धार का फ़िक्र और बोझ राधास्वामी दयाल के चरणों में डाल कर और उनकी दया का आसरा और भरोसा लेकर, थोड़े-बहुत सदा निश्चिंत रहते हैं। उनके मन में इस तौर के चक्कर और हालतें, जैसा कि करनी वालों को पेश आती हैं, नहीं पैदा होती हैं। और जो कभी ऐसी क़ैफ़ियत उनके दिल पर गुज़रती है, तो उनका वे बहुत ख़्याल और सोच भी नहीं करते, और दया की मुख्यता करके, ऐसी हालत में बहुत घबराहट या चिंता उनको नहीं सताती है ॥

६—इस क़िस्म के जीव कसरत से हैं, और करनी वाले ब-निस्बत इनके, थोड़े हैं ॥

७—शरण वाले जीव अपने मन और इन्द्रियों की रोक-टोक भी बहुत नहीं करते और दुनिया और उसके कारोबार और भोग-बिलास के बर्ताव में सिर्फ़ मामूली तौर पर एहतियात करते हैं। पर वे अपनी प्रीति और प्रतीत को राधास्वामी दयाल के चरणों में, और भी उनके सतसंग में, जिस क़दर बने, बढ़ाते रहते हैं, और राधास्वामी दयाल की दया का हाल सुनकर और थोड़ी-बहुत अपने अंतर और बाहर की कार्रवाई में उस की परख करके, शरण को मज़बूत और पक्का करते रहते हैं ॥

८—हुज़ूर राधास्वामी दयाल को सब जीवों की सम्हाल हर तरह मंज़ूर है। जो करनी वाले जीव हैं, वे उनके होशियार बालक हैं, और शरण वाले, उनके छोटे बच्चे हैं। वे इन दोनों की मदद करते हैं, बल्कि छोटे बच्चों की, जो अपनी करनी का बल छोड़ कर निरानिरी उनकी दया के आसरे हैं, ज़्यादा सम्हाल फ़रमाते हैं ॥

९—करनी वाले जीवों की प्रीति और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में बहुत गहरी और मज़बूत होती है जिस से कि वे किसी झकोले की हालत में नहीं डिगते हैं, यानी झोका नहीं खाते, और उनकी शरण भी गहरी और ऊँचे दर्जे की है जिससे कि कैसा ही चक्कर आवे, वह ब-दस्तूर क़ायम और मज़बूत रहती है, और वे, सिर्फ़ अपने ही जीव का

कारज नहीं बनाते, बल्कि बहुत से जीवों को और ख़ास कर शरण वालों को उनके जीव के उद्धार में बहुत मदद देते हैं ॥

१०—जब कोई भारी चक्कर या झकोला आवे, तो शरण वाले जीव अपनी कमजोरी के सबब से झोका खा जाते हैं, पर राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से ऐसी हालत में उनको, चाहे सीधे और चाहे करनी वालों की मारफ़त मदद देकर, उनकी रक्षा और सम्हाल करते हैं और दुनिया के भोग-विलास के फन्दों से भी उनको आहिस्ता-आहिस्ता बचा कर निर्मल करते जाते हैं, और हर झकोले के पीछे अनकी प्रीति और प्रतीत और शरण को ज़्यादा मज़बूती देते जाते हैं ॥

११—जीवों को चाहिए कि जैसे बने, तैसे, राधास्वामी दयाल के सतसंग में शामिल हो कर उनके चरणों की शरण लेवें, तो चाहे वह करनी के लायक़ होवें या शरण के अधिकारी होवें, राधास्वामी दयाल सब की, हर तरह से रक्षा और सम्हाल करके और दिन-दिन प्रीति और प्रतीत अपने चरणों में बढ़ाकर, अबेर-सबेर एक दिन निज घर में पहुँचाकर परमानंद को प्राप्त करावेंगे, और जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से बचा कर अमर-अजर कर देंगे, और अपने निज धाम में अपने दर्शन का परम बिलास बख़्शेंगे ।

१२—करनी वाले जीवों को इस क़दर ख़्याल रखना

चाहिए कि अभ्यास करके उनकी सुरत अन्तर में, दिन-दिन ऊँचे की तरफ़ चढ़ती जावे, और शरण वालों को इतनी होशियारी रखनी चाहिए कि उनके, इस बात के यक़ीन में, कि राधास्वामी दयाल अपनी दया से ज़रूर उनका बेड़ा पार लगावेंगे, ख़लल न पड़ने पावे। और दोनों क़िस्म के जीवों को बराबर कोशिश और एहतियात करना चाहिए कि उनकी प्रीति और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में दिन-दिन बढ़ती और मज़बूत होती जावे, और दुनिया और उसके भोग और पदार्थों से उनके मन और चित्त, जिस क़दर बन सके, दिन-दिन उपराम होते जावें ॥

१३—जो इस क़दर होशियारी दोनों क़िस्म के जीवों से बन आवेगी, तो कोई शक नहीं है कि राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से उन जीवों का कारज सहज में, उनके अधिकार के मुवाफ़िक़ बना कर, दर्जे-ब-दर्जे एक दिन परम पद में पहुँचावेंगे ॥

बचन तेतालीसवाँ

अभ्यास के ख़ास विघ्नों का वर्णन और उनके दूर करने और अभ्यास की तरक़्क़ी की युक्ति

१—जो लोग कि राधास्वामी मत में शामिल होकर अभ्यास कर रहे हैं, उनके लिए यह बचन कहा जाता है कि जब-जब भजन और ध्यान में रस कम मिले या मन बिल्कुल न लगे, तब उनको क्या यत्न करना चाहिये ॥

२—जब भजन में शब्द की आवाज़ साफ़ न मालूम होवे या बिल्कुल न सुनाई देवे, तब मुनासिब है कि उस वक़्त उसी आसानी से बैठे हुए ध्यान करे और जो थोड़े अरसे से इस तौर से शब्द न सुनाई देवे या आवाज़ साफ़ न आवे, तो ध्यान करके उठ खड़ा होवे, और फिर दूसरे वक़्त भजन करे, और जो फिर भी शब्द न मालूम होवे, तो ब-दस्तूर ध्यान करे और इसी तौर से हर रोज़ अभ्यास करे जावे, जब तक कि शब्द सुनाई न देवे। दो-चार रोज़ या एक हफ़्ते या दो हफ़्ते में राधास्वामी दयाल की दया से ज़रूर थोड़ी या बहुत आवाज़ मालूम पड़ेगी ॥

३—जब भजन में बैठे और गुनावन यानी ख़्यालात दुनिया के पैदा होवें तो चाहिए कि उनको हटावे और दूर करे। और जो ऐसा न कर सके तो मुनासिब है कि उस वक़्त सुमिरन और ध्यान उसी आसन से बैठे हुए करे। जो ध्यान में मन लग जावेगा तो ख़्यालात दूर हो जावेंगे, और जो फिर भी मन ख़्यालात उठाता रहे, तो भजन और ध्यान छोड़ कर नाम का सुमिरन, धुन के साथ, या उस क़ायदे से जैसा कि बचन ३० में लिखा है, मन ही मन में, या थोड़ी आवाज़ के साथ, एक या पौन घंटे, सुरत और मन और दृष्टि को सहसदलकँवल के मक़ाम पर जमा कर, और आँखें बन्द करके करे। इस तौर से ज़रूर सुमिरन का रस आवेगा और मन निश्चल हो जावेगा। फिर इख़्तियार है कि चाहे ध्यान करे या भजन करे, और

जो शान्ति आ गई होवे, और तबियत ज़्यादा अभ्यास को न चाहे या फ़ुरसत न होवे तो उठ खड़ा होवे ॥

४—जब ध्यान और सुमिरन में बैठे और उस वक़्त मन न लगे या बे-फ़ायदा दुनिया के ख़्याल उठावे या काम, क्रोध, लोभ और मोह की तरंगें उठावे, तो भी मुनासिब है कि नाम का सुमिरन धुन के साथ या उस क़ायदे से, जैसा कि वचन ३६ में लिखा है, बाहर या अंतर आवाज़ के साथ, पौन घंटे या एक घंटे तक, करे। इस में ज़रूर थोड़ा-बहुत रस आवेगा और मन निश्चल हो जावेगा और कुछ प्रेम की हालत भी मालूम होवेगी। उस वक़्त फिर चाहे ध्यान करे या इस क़दर काम करके उठ खड़ा होवे।

५—जो मन अकसर भजन और ध्यान में नहीं लगता है और गुनावन ज़्यादा उठाया करता है, तो भी यही इलाज करना चाहिये, यानी हफ़्ते, दो हफ़्ते एक-एक घंटे नाम की धुन का उच्चारण करे। इस में सफ़ाई हासिल होगी और थोड़ा-बहुत रस आवेगा और फिर ध्यान और भजन थोड़ी-बहुत दुरुस्ती के साथ बन पड़ेगा, और जब इन दोनों में रस आने लगे, या मन थोड़ा-बहुत ठहरने लगे, तब नाम का सुमिरन धुन के साथ मौक़ूफ़ कर दे या दो बार, घंटे-घंटे भर करता रहे ॥

६—नाम की महिमा बहुत बड़ी है, पर बिना भेद और जुगत के, यह अभ्यास कुछ फ़ायदा नहीं दे सकता

है या यह कि जो फ़ायदा हासिल होगा, वह ऊपरी होगा और क़ायम नहीं रहेगा ।।

७—जबकि नाम के सुमिरन में मन लग जावे, और उस वक़्त जो शब्द सुनाई देवे या रोशनी नज़र आवे या आनंद प्राप्त होवे, उसको सच्चा संग शब्द या सतगुरु का समझना चाहिये, क्योंकि यह सब रूप यानी आनन्द रूप और शब्द स्वरूप और प्रकाश रूप सतगुरु के हैं, और जानना चाहिये कि इन में से कोई भी हासिल हुआ तो ज़रूर सतगुरु और शब्द के साथ मेला हो गया और अभ्यास दुरुस्त बना ।।

८—जब भजन के वक़्त आवाज़ बाईं तरफ से आवे, तो चाहिये कि तवज्जह अपनी ऊपर की तरफ़ को लगावे और बायें कान का दबाओ हल्का करे या बिल्कुल न दबावे या अँगूठा कान में से निकाल लेवे, तो आहिस्ता-आहिस्ता आवाज़ दोनों आँखों के मध्य में, ऊपर की तरफ़ से आती मालूम होगी और फिर उसी में चित्त लगावे ।।

९—जो फिर भी आवाज़ बाईं तरफ़ से ब-दस्तूर जारी रहे तो मुनासिब है कि उसी आसन में बैठे हुए सुमिरन और ध्यान करे और ऊपर की तरफ़ दूसरे या तीसरे स्थान पर मन और सुरत को जमावे, तो उम्मीद होती है कि थोड़े अर्से में, जो कोई ख़्याल दुनिया के नहीं उठेंगे तो आवाज़ का घाट बदल जावेगा, यानी ऊपर की तरफ़ से या दायें कान की तरफ़ से आवाज़ सुनाई देने

लगेगी, और चाहिए कि बायें कान की तरफ़ से तवज्जह बिल्कुल हटा लेवे ॥

१०—और जो इस तौर से अभ्यास करने पर भी आवाज़ का घाट या मक़ाम न बदले तो ब-दस्तूर सुमिरन और ध्यान करके उठ खड़ा होवे, और जब तक बाईं तरफ़ से आवाज़ आती रहे, तब तक हर रोज़ यही अभ्यास, सुमिरन और ध्यान का, भजन के आसन से बैठ कर जारी रक्खे। यक़ीन है कि राधास्वामी दयाल की दया से चन्द रोज़ में हालत बदल जावेगी यानी ऊपर की तरफ़ या दाईं तरफ़ से आवाज जारी हो जावेगी ॥

११—जब कभी भजन के वक़्त पिंडलियों में और पैरों में पटकन यानी दर्द इस क़दर पैदा होवे कि अभ्यासी बैठ न सके, तो चाहिये कि अपनी दोनों कुहनियाँ वैरागिन लकड़ी पर या चारपाई पर जमा कर दो-ज़ानू यानी ऊँट की तरह पिंडलियों को दबा कर बैठे, तो यक़ीन है कि पकटन यानी दर्द का असर कम हो जायेगा, और भजन और ध्यान में थोड़ा-बहुत लग कर, मन, रस पावेगा और जो इस तरह बैठने से भी आराम न मिले, तो चाहिए कि उठ कर पाँच-सात मिनट टहले, यानी चहलकदमी करे और जब दर्द दूर हो जावे तो फिर, ब-दस्तूर, अभ्यास करे और जो इस पर भी आराम से न बैठा जावे, तो उस वक़्त भजन और ध्यान मौक़ूफ़ करके, सिर्फ़ नाम का सुमिरन धुन के साथ थोड़ी देर करके उठ खड़ा होवे और दूसरे वक़्त भजन और ध्यान करे।

१२—मालूम होवे कि यह दर्द पिंडलियों में इस सबब से पैदा होता है कि सुरत की धार का सिमटाओ और खिंचाओ ऊपर की तरफ़ होता है और जब इस तरह सुरत पिंडलियों में से खिंचती है, तब रगें उसके वास्ते तड़पती हैं, सो आहिस्ता-आहिस्ता उनको, सुरत की धार के थोड़े-बहुत खिंचाव की बर्दाश्त होती जावेगी, और तब दर्द भी कम होता जावेगा और कोई तकलीफ़ अभ्यास में नहीं मालूम होगी ॥

१३—कभी-कभी ऐसा होता है कि भजन का अभ्यास करते-करते हाथ और बाहें और पिंडलियाँ और पैर सुन्न हो जाते हैं, यानी किसी क़दर बेकार हो जाते हैं और कभी उंगलियाँ सुन्न होकर छूट जाती हैं, तो इस बात का कुछ अंदेशा नहीं है। उंगलियाँ छोड़ कर जो भजन बन जाय तो जिस क़दर हो सके, भजन करता रहे या जो आवाज़ न सुनाई देवे तो उस वक़्त ध्यान करता रहे और जब भजन कर चुके, तब थोड़ी देर हाथ और पैर फैला के ख़ाली बैठे और फिर उठ कर थोड़ी देर टहले, तो सब अंग ब-दस्तूर हो जावेंगे ॥

१४—हाथ-पैर सुन्न हो जाने का सबब भी वही सुरत का खिंचाव है और यह निशान है कि भजन दुरुस्ती के साथ बन रहा है, क्योंकि सच्चे भजन की महिमा यही है कि मन और सुरत का सिमटाओ और खिंचाओ नीचे की तरफ़ से ऊपर को होता जावे।

१५—कभी भजन या ध्यान की हालत में नींद का

सा ग़लबा मालूम होकर अभ्यासी बे-ख़बर हो जाता है। इस विघ्न का नाम लय है। यह नींद की हालत जो पैदा होती है, इसका नाम तुन्द्रा है जो कि जाग्रत और सोने के बीच की हालत हैं। शुरू अभ्यास में ऐसी हालत कभी किसी की होती है, सो उसको मुनासिब है कि जब नींद यानी बेहोशी आती हुई मालूम होवे, तो उसी वक़्त उठ कर दस-बीस कदम टहले, और जब सुस्ती दूर हो जावे, तब फिर अभ्यास में बैठ जावे, और जब कभी ज़्यादा सुस्ती मालूम होवे तब उठ कर मुँह धोवे और फिर अभ्यास शुरू करे, और ज़रूरत होवे तो भजन के वक़्त नाम का अंतरी सुमिरन भी करता जावे। इस तरह थोड़े अरसे में यह विघ्न दूर हो जावेगा ॥

१६—सिवाय लय के, तीन विघ्न और भी हैं जो अभ्यासी को दर्जे-ब-दर्जे सताते हैं और उनके नाम ये हैं—विक्षेप, कषाय, रसास्वाद। इनके अर्थ और दूर करने की तरकीब नीचे लिखी जाती है ॥

१७—विक्षेप, भजन या ध्यान में एक दम चित्त के हट जाने या झटका लगने का नाम है, जैसे किसी ने आकर आवाज़ देकर जगा दिया या बदन को हिला दिया या कोई मन की ज़बर तरंग ने एकाएक उठ कर भजन या ध्यान से अलेहदा कर दिया या किसी क़िस्म का असर, जैसे कीड़ा रेंगता है, या कोई जानवर, चींटी वग़ैरा काटती है, बदन पर मालूम होवे और अभ्यासी उसके दूर करने को भजन और ध्यान को एक दम छोड़

देवे। इसका जतन यह है कि आप लोगों को समझा देवे कि वक़्त भजन और ध्यान के, उसको कोई ज़ोर से न पुकारे। जो ख़ास ज़रूरत होवे तो आहिस्ता आवाज़ देवे या नरमी के साथ उसके पैरों को छू देवे तो अभ्यासी जान पड़ेगा॥

१८—और मन की तरंग के साथ जहाँ तक मुमकिन होवे, शामिल होकर भजन से जुदा न होवे यानी ग़ाफ़िल न हो जावे। इस क़िस्म के विघ्न कोई दिन अभ्यासी को पेश आते हैं। फिर जिस क़दर उसका अभ्यास पकता और बढ़ता जावेगा, उसी क़दर ये विघ्न दूर होते जावेंगे, यानी उसका असर अभ्यासी पर बहुत कम होवेगा॥

१९—कषाय, इस से यह मतलब है कि पिछले जन्मों के ख़्याल भजन के वक़्त उठें कि जिनको अभ्यासी ने इस जन्म में न देखा है और न सुना है॥

२०—यह ख़्याल गुनावन के तौर पर पैदा होते हैं और बग़ैर थोड़ी देर अपना भोग दिये, दूर नहीं होते, पर जो अभ्यासी विरह और प्रेम अंग लेकर भजन करता है या गुरु स्वरूप को अगुवा करके अभ्यास करता है, उसको यह विघ्न कम सतावेंगे। इस वास्ते मुनासिब है कि जब ऐसे ख़्याल सन्मुख आवें, तो उस वक़्त, भजन के साथ ध्यान शामिल करे, तब कुछ अरसे में वे ख़्याल दूर हो जावेंगे॥

२१—रसास्वाद, इससे यह मतलब है कि अभ्यासी भजन के वक़्त थोड़ा रस पाकर मगन और तृप्त हो जावे

और फिर ज़्यादा अभ्यास में उससे न बैठा जावे या किसी क़दर ग़फ़लत आजावे ॥

२२—इसके दूर करने का जतन यह है कि जब ऐसी हालत होवे तो पाँच-चार मिनट के वास्ते भजन छोड़ कर और हाथ पैर फैला कर बैठ जावे या उठ कर दस-बीस क़दम टहले, तो आहिस्ता २ यह विघ्न दूर हो जावेगा ॥

२३—कभी ऐसा होता है कि भजन के वक़्त अभ्यासी की आँखों में या माथे में दर्द होने लगता है, तो ऐसे वक़्त चाहिए कि भजन और ध्यान छोड़ देवे। फिर दूसरे वक़्त तीन-चार घंटे बाद करे और जो मौक़ा होवे तो घन्टे-दो घन्टे आराम कर लेवे, इस से वह दर्द दूर हो जावेगा ॥

२४—यह दर्द इस सबब से पैदा होता है कि अभ्यासी ज़ोर देकर अपने मन और सुरत को ऊपर की तरफ़ खींचे या अपनी आँखों की पुतलियों को जोर से ऊपर की तरफ़ को ताने और चढ़ावे, सो यह बात मुनासिब नहीं है। अभ्यासी को चाहिये कि यह काम आहिस्तगी के साथ, जिस क़दर कि बर्दाश्त होती जावे, करे, और ज़्यादा ज़ोर न लगावे, क्योंकि ज़्यादा ज़ोर लगाने में ख़ून ऊपर की तरफ़ चढ़ता है और रगों में मामूल से ज़्यादा भर कर, दर्द पैदा करता है ॥

२५—जिस अभ्यासी को कि भजन और ध्यान में रस और आनन्द उसकी चाह के मुवाफ़िक़ मिलता है और दिन-दिन बढ़ता जाता है, उसको चाहिए कि जब

अभ्यास में बैठे, तब पहिले इरादा कर ले कि मैं इस वक़्त एक घन्टे या दो घन्टे या तीन घन्टे अभ्यास करूँगा, और उसके पीछे उठ कर फ़लाँ काम करूँगा। इस तरह उसके मन और सुर्त मुक़र्रर किये हुए वक़्त पर उतर आवेंगे और उस वक़्त अभ्यास पूरा हो जावेगा ॥

२६—जिस अभ्यासी की ऐसी हालत होती है कि कभी शब्द प्रकट होता है और कोई दिन पीछे गुप्त हो जाता है, और फिर थोड़े दिन पीछे सुनाई देने लगता है, तो यह कसर उसके पिछले या हाल के कर्मों और ख़्यालों की है, या यह कि अभ्यासी दस्तूर के मुवाफ़िक़ रोज़मर्रा अभ्यास नहीं करता है, यानी कभी-कभी छोड़ देता है ॥

२७—इसका इलाज यह है कि अभ्यासी अपने (१) व्यवहार, (२) खान-पान, (३) और अपने मन और इन्द्रियों की चाल-ढाल, (४) अपनी समझ और ख़्याल, और (५) अपनी प्रीति और प्रतीत को ग़ौर करके देखे और जाँच करे कि उसमें किस क़दर कसर है, और (६) अपने संग-कुसंग की भी एहतियात करे, क्योंकि संसारी और निन्दकों के संग से अभ्यास में विघ्न पड़ता है, और और इन बातों में कसर और नुक़्स नज़र आवे तो उसको, प्रेमी अभ्यासियों का सतसंग या बानी का ग़ौर से पाठ करके दूर करे, और आइन्दा को अपने व्यवहार और बर्ताव और खान-पान और चाल-ढाल और ख़्यालों को सम्हाले, और राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत को बढ़ावे, और संशय और भ्रम को, जिस क़दर

जल्दी बने, अपने मन से निकाल देवे, और कुछ वक़्त अभ्यास का भी बढ़ावे। और जो भजन में रस न आवे तो ध्यान ज़्यादा करे और ध्यान में भी रस न आवे तो नाम का सुमिरन, धुन के साथ, करे। तब आहिस्ता-आहिस्ता यह विघ्न हट जावेगा और फिर बराबर भजन में शब्द सुनाई देने लगेगा, और ध्यान में भी थोड़ा-बहुत रस आवेगा॥

२८—मालूम होवे कि हर एक अभ्यासी की हालत, चाहे मर्द होवे या औरत, मुआफ़िक़ उसके (१) पिछले और हाल ने कर्मों के, और भी मुआफ़िक़ उसके (२) शौक़ यानी विरह और प्रेम के, और भी मुआफ़िक़ उसकी (३) प्रीति और प्रतीत के दर्जे के, जुदा-जुदा है और उसी मुआफ़िक़ उसको अभ्यास में रस मिलता है और मन भजन, ध्यान और सुमिरन में लगता है। इस वास्ते हर एक को चाहिए कि अपनी हालत की निरख-परख करता रहे, और जिस बात में कसर देखे, उसको दूर करने के लिए सचौटी के साथ यत्न करता रहे, और दया और मेहर की प्राप्ति के वास्ते, और क़ुसूरों की मुआफ़ी के लिए जब-तब प्रार्थना भी करता रहे, और आइन्दा को जिस क़दर बने, एतिहयात और होशियारी भी करता रहे, तो राधास्वामी दयाल की दया से वे कसरें आहिस्ता-आहिस्ता दूर होती जावेंगी और क़ुसूर भी कम बन पड़ेंगे, और उसी क़दर अभ्यास में ठहराओ और रस बढ़ता जावेगा और एक दिन सफ़ाई होकर, निर्मल आनन्द प्राप्त होगा,

और अपनी तरक़्क़ी दिन-दिन आप मालूम होती जावेगी ॥

२६—जो किसी को ध्यान में स्वरूप का दर्शन न होवे, या कभी-कभी होवे, तो इस से अपने मन में निराश न होवे या यह ख़्याल न करे कि मेरे अभ्यास में भारी कसर है। उसको चाहिए कि स्थान पर सुरत और मन को जमा कर स्वरूप का ख़्याल करता रहे, तो आहिस्ता-आहिस्ता मन और सुरत उस स्थान पर ठहरने लगेंगे और रस भी आवेगा। जो ठहराओ नहीं होता या थोड़ा-बहुत रस नहीं मिलता तो जानना चाहिये कि शौक़ और प्रेम की कसर है, क्योंकि जो स्वरूप में प्यार होगा तो ज़रूर मन और सुरत की धार, उसका ख़्याल करते ही, स्थान की तरफ़ चढ़ेगी और ऊँचे चढ़ने में ज़रूर किसी क़दर आनन्द मिलेगा। इस वास्ते अभ्यासी को मुनासिब है कि प्रेम और शौक़ के साथ ध्यान करे, और जो प्रेम की कसर है तो सतगुरु राधास्वामी दयाल की महिमा और उनकी दया को दिल में याद करके थोड़ा-बहुत प्रेम पैदा करे। इसी तरह करते २, ध्यान में रस मिलने लगेगा और स्वरूप का दर्शन भी कभी २ अभ्यास के समय होता रहेगा। और नहीं तो कभी २ सुपने में ज़रूर दर्शन मिलेगा और उस दर्शन को सच्चा और असली दया और मेहर का निशान समझना चाहिए। ऐसे दर्शन के मिलने से अभ्यासी की प्रीति और प्रतीत बढ़नी चाहिये।

३०—अभ्यासी को चाहिए कि इसी तरह, जैसा कि ऊपर लिखा है, आहिस्ता २ अपना ध्यान बढ़ाता जावे, यानी एक स्थान पर वर्ष-दो-वर्ष या कम या ज़्यादा अभ्यास करके, और इसी तरह पर, दूसरे स्थान पर ध्यान लगावे और फिर इसी तरह स्थान २ पर ध्यान का अभ्यास करता हुआ दसवें द्वार या सत्तलोक तक अपनी सुरत को पहुँचा कर ठहरावे। तो इस तरह इतने मक़ाम तक, जीते-जी, उसका रास्ता साफ़ हो जावेगा और सुरत, सूक्ष्म अंग से, वहाँ पहुँच कर ऊँचे देश का रस और आनन्द पावेगी ॥

३१—प्रेमी अभ्यासी, जो चाहे तो शुरू ही से एक एक स्थान पर थोड़ी २ देर अपने मन और सुरत को ठहरा कर सत्तलोक तक बराबर हर रोज़ ध्यान कर सकता है, और जब पोथी में से भेद के शब्दों का पाठ करे या सुने तो उस वक़्त जैसे-जैसे उन शब्दों के स्थानों का ज़िक्र आता जावे, उसी मुआफ़िक़ स्थान २ पर अपने मन और सुरत से, स्वरूप का ध्यान करे, तो उसको पाठ का रस भी बहुत आवेगा और उसके ध्यान का अभ्यास भी हर एक स्थान पर जल्दी पकता और बढ़ता जावेगा, यानी एक-दम सत्तलोक तक के ध्यान का रास्ता जारी हो जावेगा। और जो ध्यान के साथ (अभ्यास के समय) नाम का सुमिरन भी करता जावेगा तो और कोई ख़्याल नहीं उठेंगे और अभ्यास में विघ्न नहीं डालेंगे। पर इस तरह का अभ्यास, बग़ैर गहरे शौक और प्रेम के, दुरुस्ती और आसानी से नहीं बन पड़ेगा ॥

बचन चवालीसवाँ

राधास्वामी मत की सहज जुगत का सहज अभ्यास

१—राधास्वामी मत में जो जुगत (जैसे सुमिरन, ध्यान और भजन) बताई गई है, वह जुगत भी सहज है और उसका अभ्यास भी सहज है, यानी सिर्फ़ तवज्जह का शौक़ के साथ बदलना, यही अभ्यास है ॥

२—जैसे सब जीवों की तवज्जह संसार और उसके पदार्थों की तरफ़, इन्द्रियों के द्वारे, बाहर की तरफ़ को हो रही है, इसी तरह निज घर यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम का भेद लेकर अपके घट में, ऊपर की तरफ़, शौक़ के साथ तवज्जह करना, यही अभ्यास है ॥

३—पहले प्रेम पत्रों में बयान हो चुका है कि कुल रचना धारों की है, और ये धारें बहुत सी तो निहायत सूक्ष्म हैं कि देखने और छूने में नहीं आती हैं, जैसे दृष्टि की धार, आवाज़ की धार और ख़ुशबू की धार वग़ैरा। और निहायत स्थूल रचना में धारें अर्क़ रूप और ख़ून रूप और तार २ और रग २ हो गई हैं। और यह हाल देह में अंग २ और उनके मांस में, और दरख़्तों में डाल-डाल और उनकी चमड़ी या छाल में साफ़ दिखलाई देता है। हर एक डाली और उसके तारों और बदन में हर एक रग और नली बतौर नल के है, यानी अन्दर में पोले हैं कि जिनमें होकर सूक्ष्म धारें जारी रहती हैं ॥

४—जब मन में कोई तरंग उठती है यानी चाह पैदा होती है तो पहिले, अन्तर में हिलोर होती है, और फिर वह तरंग रूप खड़ी हो कर, जिस इन्द्रिय द्वारे उस चाह की कार्रवाई होनी चाहिए, उसी इन्द्रिय की तरफ़, धार रूप हो कर चलती है, और इन्द्रिय के स्थान से जिस काम या पदार्थ की चाह है, वह धार बाहर निकल कर उसी काम या पदार्थ में लग जाती है। इसी तरह से कुल कार्रवाई देह और दुनिया के कामों की, धारों के वसीले से, जारी है। देह में अन्तरी कामों के वास्ते वह काम करने वाली धारें, देह के अंग-अंग में फैलती हैं। और बाहर के कामों में वे धारें इन्द्रिय द्वारों से बाहर फैलती हैं। ये सब धारें खर्च में लिखी जाती हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी उलट कर अपने भंडार में नहीं आती हैं॥

५—जो कोई कहे कि जो धारें इन्द्रियों के द्वारे खर्च होती हैं, वे तो वापस नहीं आती हैं, पर अनेक धारें बाहर से इन्द्रियों के द्वारे अन्दर में दाख़िल होती हैं, तो यह बात सच है। पर मालूम होवे कि जिस क़दर धारें बाहर से अन्दर में आती हैं, वे, ब-निस्बत उन धारों के, जो बाहर निकलती रहती हैं, बहुत ओछी और स्थूल और चैतन्यता में बहुत कम-ताक़त वाली होती हैं, और जो कुछ कि खर्च हो रहा है, वह उसका पूरा-पूरा एवज़ नहीं दे सकती हैं, क्योंकि वे सब धारें, बहुत करके, जड़ पदार्थों या कम दर्जे के चैतन्य से आती हैं। और जो धारें कि बाहर के तत्वों से आती हैं, वे अलबत्ता स्थूल देह के मसाले की किसी क़दर मददगार हैं। पर सुरत-चैतन्य को इन में से किसी धार का भी फ़ायदा नहीं पहुँचता है॥

६—और तन, मन और इन्द्रियों को भी इन धारों से बहुत कम मदद मिलती है। अलबत्ता, प्राण को बाहर की ताज़ा हवा बहुत मदद देती है यानी उसको कसाफ़त को दूर करके ताज़गी देती है और उसका असर, किसी क़दर, मन तक भी पहुँचता है। यहाँ खान-पान का कुछ जिक्र नहीं है॥

७—यहाँ पर इस क़दर बयान करना ज़रूर है कि बहुत से बारीक और साच-विचार और अक़्ल के कामों में, सुरत की धार की ज़्यादा मदद इन्द्रिय द्वारों पर आती है, क्योंकि बग़ैर सुरत की धार के, कोई आदमी कोई काम, और ख़ास करके अक़्ल और सोच-विचार के काम नहीं कर सकता है, और बाहर से जो धारें अन्दर आती हैं, उन में कोई कोई सुरत की धार और बाक़ी सब सामान्य चैतन्य की धारें हैं॥

८—सुरत की धार से मतलब यह है कि जब यह आदमी अपने से विशेष चैतन्य यानी ज़्यादा समझदार से मदद लेवे॥

९—और परमार्थ में संत सतगुरु और साध महा चैतन्य पुरुष हैं। उनसे जो मन और सुरत को ताक़त मिलती है, उसका तो कुछ बयान नहीं हो सकता। उसका हाल परमार्थ के सच्चे शौक़ वाले, जिनको प्रेमी और भक्त जन कहते हैं, ख़ूब जानते हैं कि सतसंग में बैठ

कर दर्शन और बचन में किस क़दर रस और आनन्द प्राप्त होता है ॥

१०—अब समझना चाहिए कि जिस तरफ़ जिस आदमी की तवज्जह होती है, उसी तरफ़ से उसके मन से धार प्रकट होकर रवाँ होती है, और जिस क़दर उसका शौक़ तेज़ होता है, असी क़दर ताक़तवर और मज़बूत धार जारी होकर उसकी चाह के पूरा करने के लिये जो यत्न मुनासिब और ज़रूरी है, करती है ॥

११—इसी तरह जब किसी के मन में परमार्थ की चाह शौक़ के साथ पदा होगी, तो जो उसको राधास्वामी मत के मुआफ़िक भेद अपने निज घर का और महिमा सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की, और हाल रास्ते और मंज़िलों का और जुगत चलने की, संत सतगुरु या साधगुरु या उनके सच्चे प्रेमी सतसंगी से मालूम हुई है, तो उसकी चाह के साथ ब-दस्तूर धार प्रकट होकर निज घट में ऊपर की तरफ़ ज़रूर रवाँ होगी। और जिस मंज़िल का उसने, शुरू में, ठेका मुक़र्रर किया है, वहाँ तक थोड़ा-बहुत ज़रूर पहुँचेगी और ऊँचे देश की चढ़ाई का थोड़ा-बहुत रस ज़रूर आवेगा यानी हल्कापन और शीतलता थोड़ी-बहुत मालूम पड़ेगी। पर शर्त यह है कि उस वक़्त दूसरी धार न उठे यानी देह या दुनिया की तरफ़ का का कोई ख़्याल मन में न आवे, नहीं तो जो धार ऊपर की तरफ़ को जारी हुई है, वह गिर पड़ेगा, और नई धार

उस ख़्याल के मुवाफ़िक़ नीचे या बाहर की तरफ़ को जारी हो जावेगी और वह परमार्थी रस और आनन्द फ़ौरन जाता रहेगा ॥

१२—अब मालूम होना चाहिये कि राधास्वामी मत का अभ्यास किस क़दर सहज है, यानी सिर्फ़ तवज्जह और उसकी तरफ़ का बदलना है ॥

१३—सब आदमी अपनी २ चाह के मुआफ़िक़ जो काम करना चाहते हैं, उसको तवज्जह के साथ करते हैं। पर दुनिया के कामों में उनके मन और सुरत की धार बाहर की तरफ़ बहती है और ख़र्च में दाख़िल होती है। जो वही आदमी परमार्थ की महिमा, और उसके हासिल करने की ज़रूरत समझ कर और उसका थोड़ा-बहुत यक़ीन लाकर शौक़ के साथ उसकी चाह उठावे, तो तवज्जह उनकी, राधास्वामी मत के भेद के मुआफ़िक़, घट में ऊपर की तरफ़ बदलेगी, और ब-दस्तूर मन और सुरत की धार, उस तरफ़ को उठ कर रवाँ होगी। उस धार के उठने और चढ़ने में ज़रूर शीतलता और आराम मिलेगा और दिन २ जिस क़दर ऊँचे चढ़ाई होती जावेगी, रस और आनन्द बढ़ता जावेगा और एक दिन ऐसा अभ्यासी अपने निज घर में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होकर अमर-अजर हो जावेगा और अपने जीते जी, अपना सच्चा उद्धार आहिस्ता २ होता हुआ आप देखता जावेगा।

१४—दुनिया के कामों और उनकी चाहों और ख़्यालों में तवज्जह करना स्वार्थ कहलाता है और इसका फल, देह के सँग दुख-सुख भोगना और बारम्बार जन्म-मरण की तकलीफ़ उठाना है। और परमार्थ की चाह पैदा करके, घट में, अपने घर की तरफ़, तवज्जह के साथ धार का जारी करना, परमार्थ कहलाता है। और इसका फल देह और दुनिया के दुख-सुख से दिन २ बचाओ होता जाना और जन्म-मरण के चक्कर से बिलकुल छूट जाना, और दिन २ ऊँचे देश का रस और आनन्द ज़्यादा से ज़्यादा पाते हुए, अपने सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर अमर आनन्द को प्राप्त होना है॥

१५—परमार्थ का काम कोई नई बात नहीं है। जैसे दुनिया के कामों में बाहर की तरफ़ तवज्जह की जाती है, ऐसे ही अपने जीव के कल्याण के वास्ते अन्तर की तवज्जह करना है॥

१६—तवज्जह के साथ काम करना हर कोई जानता हैं, कुछ सिखलाने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ भेद लेकर शौक़ के साथ अन्तर में तवज्जह करना, इसी क़दर काम है कि जिस से हमेशा का आनन्द मिलना और, हमेशा को दुक्खों से बचना, मुमकिन है॥

१७—जो कठिनता और मुशकिल इस काम में, यानी परमार्थी अभ्यास में मालूम होती है, वह कमी

यक़ीन और कमी शौक़ और कमज़ोरी चाह और कमी तवज्जह के सबब से पेश आती है, या यह कि पुरानी आदत के मुआफ़िक़ परमार्थी काम के वक़्त दुनिया के ख़्याल ले बैठे तो अलबत्ता पूरा २ रस नहीं मिलेगा और शौक़ और चाह भी और उसके साथ तवज्जह भी हलकी रहेगी। जैसे कि दुनिया के जिन कामों में लाग नहीं होती या कम होती है, तो वे, जैसे चाहिए, दुरुस्त नहीं बनते, ऐसे ही जो परमार्थ में भी चाह और तवज्जह कम होगी तो धार कमज़ोर और दुबली उठेगी, और बीच में दुनिया के ख़्यालों के सबब से गिर-गिर पड़ेगी, तो परमार्थी काम भी जैसा चाहिए दुरुस्त नहीं बन पड़ेगा यानी पूरा-पूरा रस नहीं आवेगा और शौक़ नहीं बढ़ेगा ॥

१८—इस वास्ते, परमार्थी जीवों को चाहिए कि अपनी तवज्जह के बदलने में होशियारी और अहतियात, जिस क़दर बने, वक़्त अभ्यास के, करते रहें यानी परमार्थी काम के साथ, जहाँ तक बने, संसारी काम न मिलावें, और संत सतगुरु के सतसंग और बानी-बचन से मदद लेकर, अपना अभ्यास, जिस क़दर हो सके, दुरुस्ती के साथ करते रहें, और सच्चे माता-पिता कुल-मालिक राधास्वामी दयाल की शरण दृढ़ करें, तो उनकी मेहर और दया से, और इनकी मेहनत और कोशिश से, दिन-दिन काम बनता जावेगा और प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जावेगी, और फिर काम भी बहुत आसान हो जावेगा, क्योंकि जब तक प्रीति और प्रतीत मामूली दर्जे

की है, तब ही तक दिक़्क़त और कठिनता अभ्यास में मालूम होती है, और जब ये दोनों बढ़ने लगीं, तब, दिन-दिन अभ्यास में आसानी होती जावेगी और रस और आनन्द भी बढ़ता जावेगा और एक दिन काम पूरा हो जावेगा ॥

बचन पैंतालीसवाँ

सवालात एक सतसंगी की तरफ़ से, और उनके जवाबात

१—सवाल—बालक, गर्भ के अन्दर स्वाँस लेता है या नहीं ? जो लेता है तो कैसे उसकी गुज़रान होती है ? और जो नहीं लेता है तो कहाँ और किस हालत में रहता है ?

जवाब—बालक, गर्भ में स्वाँस नहीं लेता है, और सहसदल कँवल के स्थान पर उसका जीव-चैतन्य समाधि में रहता है, यानी जोत का दर्शन करता है और उस मक़ाम का शब्द सुनता है ॥

२—सवाल—बाज़े कहते हैं कि आठवें महीने में बालक को गर्भ में भूख और प्यास लगती है और उसे ग़ल्ले का अर्क़ खाने को मिलता है। जो ऐसा होता है तो मल भी पैदा होता होगा, यह बात सही है या क्या ?

जवाब—जब बालक का शरीर गर्भ में बनता जाता है तो उसका मसाला माता का ख़ून है, और जब उसकी देह

पूरी बन जाती है, तब उसको माता की ग़िज़ा या अहार का ख़ुलासा, जो अर्क़ रूप होता है, उसकी देह के बढ़ाओ और पुष्ट करने के वास्ते, उस नल के रास्ते से, जो कि नाफ़ से लगा होता है, मेदे में पहुंचता है। इस अर्क़ के हज़म करने में मल बहुत ख़फ़ीफ़ पैदा होता है और वह उस नाल में, जो मेदे से गुदा-चक्र तक आई है, जाम होता जाता है, बल्कि वक़्त पैदा होने बालक के, दाई थोड़ा मल उंगली से निकाल देती है ॥

३—सवाल—कोई २ कहते हैं कि बालक को गर्भ में पिछले जन्मों की याद रहती है, लेकिन पैदा होते वक़्त वह याद भूल जाती है, यह बात किस क़दर सही है और भूल क्यों कर होती है ?

जबाव—जो कि गर्भ में बालक के जीव की बैठक सहस दल कँवल के मक़ाम पर होती है, वहाँ उसको सब जन्मों का हाल आईने के मुआफ़िक़ रोशन नज़र आता है और उस वक़्त वह पक्का इरादा करता है कि सिवाय मालिक के चरणों की भक्ति के, दूसरे काम नहीं करूँगा। पर जब जीव, यानी सुरत उसकी, वक़्त पैदाइश के, देह में नीचे के मक़ाम पर उतर आती है, वहाँ तमोगुण के सबब से अंधकार छाया रहता है और बालक को वह सब याद भूल जाती है। और दुनिया में आकर, जैसा कि उसके पिछले कर्मों के मुआफ़िक़ संग मिलता है और जैसा कि मन का मसाला वह संग लाता है, उसी मुआफ़िक़, उसका स्वभाव

और आदत होता जाती है, और वैसी ही कार्रवाई करता है ॥

बचन छियालीसवाँ

जो सवाल कि सफ़ा २८० पर लिखे हैं उनके जवाब, ख़ुलासा तौर पर, वास्ते समझाने सतसंगियों के, लिखे जाते हैं

१—सवाल—यह दुख की रचना किसने करी और क्यों करी और उसका क्या फ़ायदा है ?

जवाब—(क) यह रचना काल-पुरुष ने करी। उसके ऐसी चाह थी कि मैं भी सत्तलोक के मुवाफ़िक़ दूसरी रचना करूँ और उसका राज भोगूँ। सो, सत्तपुरुष से आज्ञा माँग कर, नीचे के देश में, जहाँ कि चैतन्य, निर्मल और मलीन माया के साथ मिला हुआ था, आन कर, उसने तीन लोकों की रचना करी। और यहाँ, माया यानी तमोगुण की मिलौनी के सबब से (जिसके मसाले से जीवों को देह तैयार हुई है) जीवों को दुख-सुख अवश्य भोगना पड़ता है। और सुकर्म और कुकर्म जीवों से बनते हैं, और उसी के मुआफ़िक़ फल मिलता है, क्योंकि पिंड में बैठ कर जीव कर्म करने से बाज़ नहीं रह सकता और अपनी-अपनी चाह और ज़रूरत के मुआफ़िक़, रजोगुण और तमोगुण के चक्र में, कर्मों के करने में, संग और सोहबत के असर से भलाई और बुराई का फ़र्क़ कम रहता है ॥

(ख)—जो कोई कहे कि तीन गुण कैसे पैदा हुए, तो जवाब यह है कि ऊपर से जो चैतन्य की धार आई और वह त्रिकुटी के स्थान पर माया से मिली, तब तीन धारें हो गईं—यानी चैतन्य की धार सतोगुण, चैतन्य और माया की मिलौनी की धार रजोगुण, और माया की धार तमोगुण। और मालूम होवे कि तीनों धारों में, इस मक़ाम पर और उसके नीचे, थोड़ी-बहुत माया की मिलौनी है, लेकिन सतोगुण में चैतन्य प्रधान और रजोगुण में दोनों का बल बराबर है, और तमोगुण में माया प्रधान है। जो जीव सतोगुणी चक्र में पैदा हुए, वे संतोषी और शीलवान और परमार्थी हुऐ। और जो रजोगुणी चक्र में पैदा हुए, वे भोग-बिलास और ज़ाहिरी नुमाइश और मान-बड़ाई के चाहने वाले और समझ-बूझ और सफ़ाई के साथ कार्रवाई करने वाले, और ताक़त वाले, और थोड़ा परमार्थी अंग लिये हुए थे। और जो तमोगुणी चक्र में पैदा हुए, वे किसी क़दर कम-समझ और सुस्त और आलसी और हिर्सी और परमार्थ की तरफ़ से बे-ख़बर थे। और इनमें यह भी स्वभाव जबर रहा कि आप तो मेहनत और तवज्जह और कार्रवाई कम करें और दूसरों की मेहनत और कोशिश से जो फ़ायदा हासिल होवे, उसमें शरीक होने को तैयार रहें। इस सबब से इनकी तरफ़ से, ज़्यादती के काम ज़ाहिर हुए। और इनकी ऐसी हालत देख कर, दूसरी तरफ़ से भी बदले की कार्रवाई होने लगी। इस तरह, रफ़्ता-रफ़्ता, दुनिया में, सुकर्म और कुकर्म दोनों प्रकट हुए, और

उन्हीं के मुआफ़िक़, जीवों को फल मिलने लगा और फिर ऐसे कर्मों का सिलसिला आइन्दा के जन्मों में भी जारी हो गया ॥

(ग)—इस रचना के होने से यह फ़ायदा हुआ कि जो चैतन्य इस देश में माया से ढका हुआ, अचेत पड़ा था, उसको, सत्तलोक से जो धारें आईं, उन्होंने तहों से जुदा करके, और उसी तह, यानी माया के मसाले का ग़िलाफ़ जिसको देह कहना चाहिये, तैयार करके, उसमें बिठाया और उसकी चैतन्य शक्ति को, जो सोई पड़ी थी, जगा कर, उससे काम लेना शुरू किया। इस तरह जीवों को अपने निज भंडार यानी कुल्ल मालिक की क़ुदरत का तमाशा देखने और जो जो सामान उसने पैदा किये, उसके भोगने और रस लेने, और फिर अपने मालिक की पहिचान करने और उसका दर्शन हासिल करने का मौक़ा मिला। यानी सतगुरु के वसीले से, नीचे देश से ऊँचे देश में जाकर, वहाँ के महा आनन्द को प्राप्त होने का मौक़ा और सामान हासिल हुआ। अगर काल-पुरुष और माया प्रकट न होते, तो सत्तलोक के नीचे, त्रिलोकी की रचना भी कभी नहीं होती, और यहाँ का चैतन्य सदा अचेत रहता ॥

२—सवाल—जो संसार में भोग पैदा किये गए हैं, तो वे ज़रूर भोगने के वास्ते पैदा हुए हैं, फिर उन भोगों के हासिल करने और भोगने की इल्लत में, जीवों को क्यों

सज़ा या दंड दिया जाता है यानी नीची-ऊँची योनियों में क्यों भ्रमाया है ?

जवाब—जो भोग इस रचना में पैदा हुए हैं, वे सच्चे मालिक ने प्रसन्न होकर प्यारे भक्तों और प्रेमी जनों के लिए, काल पुरुष और माया के हाथ से पैदा कराये। वे उन भोगों को प्रथम अपने सच्चे मालिक के सन्मुख (जब संत सतगुरु रूप धार कर जगत में प्रकट होवें) पेश करते हैं, या उसके प्रेमी और भक्त जन के निमित्त तैयार करते हैं, और फिर आप भी उन्हीं भोगों को प्रशादी करा कर भोगते हैं और उनमें रस लेते हैं। अगर उनको इस भक्ति और भाव के एवज़ में दया मिलती है, और प्रेम, दिन-दिन बढ़ता है और दिन-दिन सच्चे मालिक के ज़्यादा प्यारे होते जाते हैं ॥

५—ऐसे प्रेमियों की ब-दौलत संसारी जीव भी उन भोगों का भोग करते हैं, पर वे उनको अपने और अपने कुटुम्बियों के निमित्त तैयार करके निहायत आसक्ति के साथ उनका रस लेते हैं, और दूसरों को उस में, शरीक करना नहीं चाहते और एक दूसरे से, आपस में, उन्हीं भोगों के सबब से ईर्षा करते हैं, और विरोध पैदा करके कभी २ आपस में एक दूसरे पर ज़्यादती करते हैं। और ऐसी ज़बर पकड़ उनकी इन भोगों में हो जाती है कि उन्हीं को अपना सुखदाई मानते हैं। और जो कोई उनको उन भोगों से छुड़ावे, उसको बैरी के समान देखते हैं। और उन भोगों की प्राप्ति के सबब से निहायत दर्जे का

अहंकार और ग़फ़लत और बे-परवाही और सख़्ती उनके मन में बढ़ती जाती है कि जिसके सबब से वे अपने सच्चे मालिक और निज घर को भूल कर, दिन २ उससे दूर होते जाते हैं, और नीची-ऊँची योनियों में अपनी करनी का फल भोगते हैं ॥

६—जो वे भी होशियारी और एहतियात के साथ प्रेमी जन के मुवाफ़िक़ उन भोगों को, सच्चे मालिक और उसके भक्तों को अर्पण करके और प्रशादी करा कर, और आपस में बाँट कर भोगते, तो बजाय दूरी और दुख के, मालिक की नज़दीकी और विशेष दया हासिल करके, महा सुख को प्राप्त होते ॥

७—ज़ाहिर है कि मन और इन्द्रियों के कुल भोग जड़ हैं और जिस किसी की उनमें आसक्ति और वासना रही आवेगी, वह दिन-दिन उसके संग से मनुष्य का निस्बत कम चैतन्य और ज़्यादा कम चैतन्य, और बहुत ही ज़्यादा कम चैतन्य योनियों में उतर जावेगा। इस सबब से भोगी और रागी जीव अपनी नादानी और मन-हठ करके आप ही अपना नुक़सान करते हैं ॥

८—सवाल—ऐसी रचना कि जिसमें कोई दुखी और कोई सुखी और कोई अमीर और कोई ग़रीब और कोई मुफ़लिस है, किस वास्ते और किस क़ायदे से की गई, और सब एक से क्यों नहीं पैदा किये गये ?

जवाब—दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश में

जिसकी हद सत्तलोक तक है और जहाँ काल और माया का दख़ल और गुज़र नही है, हर एक लोक में, सब रचना एकसी और सब हंस एक से रूप वाले और बराबर आनन्द लेने वाले हैं। और माया की हद में जिसमें ब्रह्मांड और पिंड की रचना शामिल है, दर्जे-ब-दर्जे, जैसे कुछ माया निर्मल और सूक्ष्म और स्थूल और मलीन होती गई, वैसे ही रचना में कमी-बेशी और फ़र्क़ होता गया, यानी निर्मल और सूक्ष्म माया के देश में सुख विशेष और दुख बहुत कम, और स्थूल, और मलीन माया के देश में सुख कम और दुख ज़्यादा होता गया, और सतोगुणी जीव विशेष सुखी, और रजोगुणी उनसे कम, और तमोगुणी इनसे भी कम सुखी, यानी ज़्यादा दुखी होते गये, और कर्मों के सबब करके यह सुख-दुख की हालत बढ़ती गई और आपस में दर्जा यानी फ़र्क़ होता गया ॥

९—यहाँ के माया के मसले का यही स्वभाव है। और इसमें भी यहाँ की रचना पर दया है कि जो जीव ज़्यादा तमोगुणी हैं यानी अंधकार में पड़े हैं, उनकी ग़फ़लत और नादानी और सुस्ती किसी क़दर दुख पाकर दूर होती है और आइन्दा को या तो ज़्यादा सुख पाने के अधिकारी बनाये जाते हैं या अपनी करनी के मुवाफ़िक़ विशेष दुखी होने से उनका किसी क़दर बचाव हो जाता है ॥

१०—और मालूम होवे कि तमोगुण की ज़्यादती के सबब से, बहुत से जीव इस रचना में हरचंद दुखी भी हैं, पर जो उनको, उस दुख की हालत के दूर

करने और विशेष सुख प्राप्त होने का यत्न बताया जावे, तो इस क़दर ग़फ़लत और नादानी उन पर छाई हुई है कि वह उसको नहीं मानते और उसके मुवाफ़िक कार्रवाई करना नहीं चाहते और अपनी मौजूदा हालत में ही रहना पसंद करते हैं ॥

११—सवाल—मालिक जो रहीम और दयाल है तो जीवों पर ऐसी सख़्ती और तकलीफ़ जैसे अकाल और मरी वग़ैरा क्यों रवा रखता है ?

जवाब—सच्चा मालिक सदा दयाल है और तीनों लोकों की रचना की कार्रवाई काल-पुरुष यानी ब्रह्म के सुपुर्द है। वह जैसी जिसकी करनी होती है, उसी मुआफ़िक़ उसके साथ बर्ताव करता है ॥

१२—जब जीव कसरत से निपट संसारी भाव में बर्ताव करके और मालिक को भूल कर अपनी तमाम तवज्जह भोग-बिलास और देह के पालन-पोषण में खर्च करते हैं, और इस सबब से, वे नीचे की योनियों में कसरत से उतरते जाते हैं, तब वह मालिक दया करके अकाल डालता है। उस वक़्त सब जीवों की हालत, मय जानवरों के, भूख-प्यास और चिन्ता और दुख में परेशान और व्याकुल होकर बदलती है, यानी जिस रीति से कि तन, मन और इन्द्रियाँ शिथिल और निबल होकर ऊपर की तरफ़ को तवज्जह करें या उनका ऊपर की तरफ़ को खिंचाव होवे, और थोड़ी-बहुत सुरत की ताक़त जागे, उस रीति में, ये सब जीव, लाचार होकर, आप ही बर्तते हैं, और इस तरह सबकी सुरतों यानी

रूहों का घाट बदलता है, यानी नीचे से ऊँचे को चढ़ाई होती है। और इस तरह सिलसिलेवार, सब जीवों को दर्जे-ब-दर्जे फ़ायदा पहुँचता है, यानी ज़्यादा सुख का स्थान पाते हैं ॥

१३—इसमें ऐन दया ही दया है। सिर्फ़ इस क़दर फ़र्क़ है कि जो जीव सोच और समझ कर और बचन मान कर संसार में दुरुस्ती से बर्ताव करते हैं, उनका दर्जा सहज में चढ़ता जाता है और जो भूल और ग़फ़लत और नादानी और बे-परवाही और बे-ख़ौफ़ी से भोगों में लिपट कर और उन में निहायत आसक्त हो कर कार्रवाई करते हैं, वे उसी क़दर दुख और तकलीफ़ पाकर सम्हलते हैं ॥

१४—इसी तरह बीमारी और मरी का भी हाल समझ-ना चाहिए। जब ओछी करनी वाले जीव संयोग से बहुत जमा हो जाते हैं, तब वे, किसी आम और सख़्त बीमारी में मुबतिला हो कर, क़रीब २ एक ही समय में देह छोड़ते हैं और ऐसी एकाएक और जल्दी-जल्दी मौत होने से बाक़ी जीव घबरा कर और अपनी-अपनी मौत का ख़ौफ़ खाकर थोड़ा-बहुत मालिक को याद करते हैं और अपनी चाल और चलन किसी क़दर दुरुस्त करते हैं। और बाज़े जीव मालिक की हस्ती का भी यक़ीन मन में लाकर पहले की निस्बत अपने व्यवहार और बर्ताव की किसी क़दर सम्हाल करते जाते हैं, और उनका घाट यानी दर्जा किसी क़दर बदल जाता है ॥

१५—और मालूम होवे कि अकाल और बीमारी और मरी के समय में बहुत से जीवों से पर-उपकार के थोड़े-बहुत अच्छे काम बन आते हैं कि जिसके सबब से वे विशेष सुख पाने के अधिकारी हो जाते हैं। और बहुतेरे जीव ख़ौफ़ खाकर और दुनिया की बे-सबाती का हाल देख कर, कोई-कोई परमार्थ की खोज में और कोई-कोई उसकी कमाई में लग कर अपनी नर-देही सुफल करते हैं और ऊँचा दर्जा पाते हैं॥

१६—सवाल—जो मालिक सर्व-समर्थ है, तो आपही हमारे मन को फेर कर हम से परमार्थी की करनी क्यों नहीं करा लेता?

जवाब—मालूम होवे कि असल में बिना मालिक के हुक्म या मौज या मर्ज़ी के, काम नहीं होता है। जो दया-पात्र और अधिकारी जीव हैं, वे अपनी रोजमर्रा की हालत और दुनिया के हाल को देख कर, आपही अपने मन में सोच-विचार करके अच्छे काम और परमार्थ की खोज और कमाई में लग जाते हैं और उनको मेहर और दया से मालिक बराबर तरक़्क़ी के वास्ते मदद देता जाता है। ऐसे लोग क़ुदरती किताब से, बहुत करके, हिदायत लेते हैं। और फिर उनको, मौज और दया से, निज भेद और सच्चे मालिक और उससे मिलने की युक्ति के बताने वाले सतगुरु भी मिल जाते हैं और उनका कारज दिन-दिन बनता जाता है॥

१७—और जो जीव कि आप से नहीं चेतते, उनको

मालिक अपनी मौज से चेते हुए जीवों की मारफ़त समझौती देकर होशियार करता है और उनका भी कारज आहिस्ता-आहिस्ता बनना शुरू हो जाता है ॥

१८—पर जो जीव कि आप से न चेतें, यानी आँख खोल कर अपने और जगत के हाल को न देखें, और उससे अपनी बेहतरी के वास्ते नतीजा और तदबीर न निकालें, और जो उनको दूसरे लोग समझावें और चितावें तो भी समझ-बूझ नहीं लाते और होशियार नहीं होते, यानी संसार के कारोबार और भोग-बिलास में हैवानों की तरह से लिपटे रहना पसन्द करते हैं, तो ऐसे जीवों की सम्हाल और तरक़्क़ी के वास्ते वह मालिक, समर्थ दयाल, आप तदबीर करता है। यानी जब ऐसे जीवों की कसरत हो जाती है, तब जैसा कि चौथे सवाल के जवाब में लिखा है, अकाल और मरी और बीमारी भेज कर, उन अचेत और ग़ाफ़िल जीवों को सम्हालता है, और जो काम कि परमार्थी जीव अपनी ख़ुशी और उमंग के साथ करके मालिक की दया और बख़्शिश हासिल करते हैं, वहां काम थोड़े और बहुत इन ग़ाफ़िल जीवों से करा लेता है—जैसे कम खाना, और जागरन करना, और दुनिया और कुटुम्ब-परिवार का मोह कम करना, और भोगों में कम बर्तना, और मान और अहंकार को तोड़ना, और दीनता और ग़रीबी की चाल में बर्तना, और मालिक और मौत की याद करना, और दुनिया और अपनी देह और कुटुम्ब और सामान से किसी क़दर चित्त में वैराग रखना, या उदासीन रहना, वग़ैरा ॥

१६—अब जीवों को इख़्तियार है कि अपने-अपने भाग्य और अधिकार या समझ और बिचार के मुवाफ़िक़ अपने असली और हमेशा के सुख हासिल करने के लिये संत सतगुरु के बचन के मुआफ़िक़ कार्रवाई करें या न करें। क्योंकि जो वे अब, और आप से चेत कर, अपने जीव के कल्याण के निमित्त कुछ थोड़ी-बहुत तवज्जह और मेहनत करेंगे, तो उनके हक़ में हर तरह बेहतर होगा यानी वे सुख और आनन्द के साथ परमार्थ की दौलत आहिस्ता २ हासिल करेंगे। और जो अपने मान और अहंकार और नादानी के ग़लबे से आप से आप नहीं चेतेंगे और होश नहीं करेंगे, तो वक़्त और मौक़ा-ए-मुनासिब पर वह मालिक दयाल आप, उनके चेतने और परमार्थ की कार्रवाई करने का बन्दोबस्त, जिस तरह मुनासिब और उनके हक़ में बेहतर होगा, करेगा॥

२०—मालूम होवे कि सिवाय ऊपर के लिखे हुए सवालों के, दो सवाल और भी हैं कि जिनका बयान खोल कर पिछले बचनों में हो चुका है और इस वास्ते उनके जवाब यहाँ पर दुबारा लिखना फ़िज़ूल समझा गया। और वे दो सवाल निसबत हस्ती सच्चे और कुल मालिक के, और जीव या सुरत उसकी अंश होने की वाबत हैं। सो बयान हो चुका है कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समर्थ हैं, और जीव उनकी अंश हैं, जैसे सूरज और सूरज की किरन। और ये दोनों अमर हैं॥

———

वचन सैंतालीसवाँ

सवाल-जवाब

१—सवाल—जिन जीवों ने सच्चे दिल से ऐसी शरण ली है कि जो कुछ होता है वह मालिक की मौज से होता है और जो कि सच्ची ख़्वाहिश इस बात की रखते हैं कि वे कर्मों के बंधनों में न पड़ें, जो कुछ अच्छा और बुरा हो सब मालिक की मौज पर छोड़ दें, तो फिर भी जो नाक़िस कर्म उनसे बनेगा, उसका जवाब-देह कौन है ? या जो ख़्यालात ना-पसंदीदा कि एकाएक उनके दिल में पैदा हो जाते हैं, और वे सच्चे दिल से यह बात चाहते हैं कि ऐसे ख़्यालात या ऐसी हरकात उनसे मनसा, वाचा और कर्मना सरज़द न हों, तो इसकी निस्बत क्या ख़्याल हो सकता है ? अगर उनके ज़िम्मे डाला जावेगा तो वे नाहक़ मारे गये, क्योंकि वे तो बारम्बार तौबा कर रहे हैं कि हे मालिक हमारे हाथ से खोटी करनी न बने। और अगर मालिक के ज़िम्मे रक्खा जावे तो वह ऐसी कार्रवाइयाँ क्यों करावेगा? तो बावजूदे कि दिल से ऐसी शरण इख़्तियार की है या करना चाहते हैं और फिर हरकात ना-पसंदीदा सरज़द हों, या एकाएक दिल में उनका ख़्याल, बिना सोचे, पैदा हो, इसका क्या यत्न है, और ये ख़्यालात क्यों पैदा होते हैं ?

८—दूसरे, वे जीव जो शरण दृढ़ करना चाहते हैं, यह समझ लेकर कि जो सब कर्म, भले और बुरे, मालिक की मौज पर छोड़ दिये जावें, तो निस्बत बुरे कर्मों के

मालिक के ज़िम्मे दोष आता है और जो ऐसा अमल करें कि जो कोई नेक करनी भूल-चूक से (गो कि नेक कर्म इस जीव से सरज़द होना एक अमर-मुहाल बल्कि ना-मुमकिन है, मगर फ़र्जन अगर मालिक की दया से बन जावे) उनसे बन पड़े तो उसके वास्ते सच्चे दिल से यह एतक़ाद कि यह मालिक ने किया और जो नाक़िस कर्म उनसे (जो रोज़ाना बनते हैं) सरज़द हों, वे सच्चे दिल से अपने ऊपर ले लें कि यह हम से हुआ और बिल-फ़ौर सरज़द होने के, अपने मालिक से मुआफ़ी चाहें, तो उनके वास्ते सूरत माफ़ी है या नहीं ? मतलब यह है कि :—

(१)—वे जीव जो कर्मों का बंधन नहीं चाहते और शरण-चरण दृढ़ करना चाहते हैं और वे सब कर्म, भले और बुरे, मालिक के ज़िम्मे रख दें।

(२)—वे जीव जो कर्मों का बंधन नहीं चाहते और शरण-चरण दृढ़ करना चाहते हैं, अगर कोई शुभ कर्म छः महीने में मालिक की दया से बन पड़े, तो वह मालिक के अर्पण, और जो ख़राब कार्रवाई नित्य और हर घड़ी होती है वह अपने ज़िम्मे ले लें, तो इन दोनों क़िस्मों में से वह जुगत बतला दीजिये जिससे कि जीव का सहज गुज़ारा हो जावे कि किस हालत में मालिक की तरफ़ से ज़्यादा रक्षा होगी और जीवों का जल्दी काम बनेगा ॥

३—जवाब—यह हालत सिर्फ़ ऐसे प्रेमी की ही हो सकती है कि जिसके मन में कोई ख़्वाहिश या चाह भोग-बिलास की, या संसार के सामान और मान-बड़ाई की प्राप्ति की

नहीं रही है। और चाहे वह गृहस्थ में रहता है, पर उसके कुटुम्बी और सम्बन्धियों की चाह और ख़्वाहिश का भी असर उसके मन में नहीं होता है, यानी उसके पालन-पोषन के निमित्त चाहे थोड़ा-बहुत कर्म भी करे, पर सब करतूत उसकी राधास्वामी दयाल की मौज के आसरे होती है, और नफ़े और नुक़सान की हालत में कभी और किसी तरह पर उसका मन रूखा-फीका या राधास्वामी दयाल की तरफ़ से उदास या दुखी नहीं होता है। ऐसे प्रेमी की सुरत की पहुँच और बैठक ऊँचे स्थान पर होगी कि जहाँ संसार की हवा बहुत कम पहुँचती है, और जो कि उसके मन में कोई क़िस्म की चाह नहीं रही है, इस वास्ते, उससे कोई कार्रवाई ऐसी नहीं बनेगी कि जिस में किसी का असली नुक़सान होवे या वह कार्रवाई बिल्कुल उलटी और खिलाफ़ मौज और मर्ज़ी कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के होवे। इस वास्ते उस प्रेमी की यह समझ कि जो कुछ होता है कुल मालिक की मौज से होता है, सही और दुरुस्त समझनी चाहिए। उसके मन में किसी हालत में हर्ष या शोक नहीं होता है, और न किसी को नुक़सान या तकलीफ़ पहुँचाने का, जान कर या अनजाने, इरादा या ख़्वाहिश होती है। फिर ऐसे प्रेमी से, नाक़िस या पाप-कर्म कभी नहीं बनेंगे, और जो कभी कोई ऐसा काम कि जिसमें किसी तरह से कुछ पाप का ख़्याल या शुबहा किया जावे, ज़ाहिर भी होगा, तो वह मौज से होगा, और उसमें ज़रूर किसी न किसी का

फ़ायदा निकलेगा, चाहे वह फ़ायदा उसी वक़्त मालूम होवे या थोड़े अर्से के पीछे। खुलासा यह है कि ऐसे प्रेमी और पूरी शरण वाले सतसंगी से कभी और किसी हालत में कोई काम पाप का, या किसी के नुक़सान या तकलीफ़ का, नहीं बन आवेगा। और जो अभी ऐसी हालत उस प्रेमी सतसंगी की नहीं है, यानी उसके मन में अनेक तरंगें, इन्द्रिय भोग और चाहें, संसार के फ़ायदे और मान-बढ़ाई की, अकसर उठती रहती हैं और उसको उनकी ख़बर भी नहीं होती या वह उनको रोक नहीं सकता है, तो समझना चाहिए कि अभी उसके पिछले-अगले कर्मों का चक्कर किसी क़दर बाक़ी है, और उसके मन और चित्त निर्मल और निश्चल नहीं हुए, यानी संसार और इन्द्रियों के भोग-विलास की मलीनता उसमें धरी हुई है, तो वह प्रेमी ऐसी समझ कि कुल अपनी करतूत को मालिक की मौज के साथ निस्बत देवे, ठीक-ठीक धारण नहीं कर सकता है। उसके अंतर में जो पाप या नाक़िस कर्म की वासना पैदा होती है, या उससे ऐसे कर्म अनजाने ज़ाहिर हो जाते हैं, तो अभी उसकी पुरानी आदत दूर नहीं हुई, और न उसके मन में पूरी सफ़ाई आई है, और न उसके मन और सुरत इस क़दर जागे हैं कि ऐसी तरंगों को उठने न देवें या फ़ौरन रोक लेवें, तो ऐसे प्रेमी को चाहिए कि नेक कामों को मौज और दया के आसरे और हवाले करके और जो करतूत नाक़िस बने तो उसका ज़हूर अपने पिछले नाक़िस कर्मों के सबब से

या अपने मन की मलीनता की वजह से समझ कर, उस पर शर्मावे और पछतावे और चर्णों में राधास्वामी दयाल के प्रार्थना करता रहे, और अपना अभ्यास ध्यान और भजन का, दुरुस्ती के साथ करता रहे, तो अलबत्ता उसकी हालत आहिस्ता २ बदलती जावेगी, और जो क़ुसूर उससे ऐसी सूरत में बनेंगे, वे भी राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से मुआफ़ फ़रमावेंगे। पर शर्त यह है कि यह अभ्यासी सच्चे मन से पछतावा करके मुआफ़ी चाहे और आइन्दा को थोड़ी-बहुत एहतियात करता जावे, और अपने मन और इन्द्रियों की चाल की, अंतर और बाहर, निरख और परख यानी चौकीदारी करता रहे, और उनको नाक़िस ख़्याल और तरंग उठाने या ऐसे कामों में बर्तने से, जहाँ तक मुमकिन होवे, रोकता रहे, और जब २ चूक जावे तब २ प्रार्थना करे और अपने मन में शर्मा कर मुआफ़ी और आइन्दा के वास्ते दया माँगे। हर एक प्रेमी सतसँगी को चाहिये कि राधास्वामी दयाल की शरण, जिस क़दर बन सके, दृढ़ करे। और शरण लेने से मतलब यह है कि सब कामों में उनकी दया और रक्षा का आसरा और भरोसा रक्खे, और जब २ और जैसे २ वे मेहर और दया करें, उसका शुक्राना अदा करता रहे, और जहाँ तक बन सके, अपनी चाह पेश न करे, और जो करे तो सिर्फ़ इत्तिला और अर्ज़ करने के तौर पर। फिर जैसे राधास्वामी दयाल अपनी मौज से उस काम को करें, उसमें, जहाँ तक बन सके, उनकी मौज के साथ राज़ी रहे, और जो मन, किसी

क़दर चक्कर लावे तो फिर अपना हाल अर्ज़ कर देवे। वे अपनी मेहर से जिस तरह मुनासिब होगा, मन की सम्हाल करेंगे ॥

४—मौज के ऊपर क़ायम रहना हर एक का काम नहीं है। यह बात पूरी २ तब ही बन आवेगी जब कोई बन्धन या चाह नहीं रहेगी। पर मौज की निरख-परख करते हुए चलना, और जहाँ तक बन सके, उसके साथ मुआफ़िक़त करना, यही अभ्यास है। भूल-चूक और क़ुसूर जब २ बनें, उन पर पछताना और शर्माना और आइन्दा के बचाव के वास्ते प्रार्थना करना, यही इलाज है। इससे मन का नाक़िस अंग आहिस्ता २ दूर होवेगा। और, उधर अभ्यास करके, मन और सुरत का घाट भी बदलता जावेगा, यानी ऊँचे और निर्मल देश में चढ़ाई होती जावेगी और मलीन देश छूटता जावेगा। तब, इसी तौर से एक दिन काम पूरा बन जावेगा। जल्दी करना और घबराना नहीं चाहिए और सच्चे प्रेमी और शरण लेने वालों के वास्ते मुआफ़ी की दया हमेशा तैयार है।

बचन अड़तालीसवाँ

सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से जान-पहिचान और मुहब्बत करना

१—हर एक आदमी, जिस २ शख़्स से उसका कोई न कोई काम निकलता है, जान-पहिचान और मुहब्बत

करता है, जैसे गृहस्थी आदमी अपनी ज़रूरत के मुआफ़िक़ किसी डाक्टर या हकीम और साहूकार और क़िस्म २ के दूकानदार और हाक़िम-वक़्त वग़ैरा से जान-पहिचान यानी मुलाक़ात और मुहब्बत पैदा करते हैं, इस मतलब से कि जब उनको किसी चीज की ज़रूरत होवे या किसी मुआमले में इन लोगों से मदद दरकार होवे, तो वह वक़्त पर आसानी से मिल जावे और किसी तरह का हर्ज और तकलीफ़ न होवे ॥

२—जैसे दुनिया के कामों के अंजाम देने के वास्ते, दुनिया के कारोवारी लोगों की जरूरत होती है और इसलिए दुनियादार लोग उन कारोबारी शख़्सों से मेल और मुलाकात रखते हैं, ऐसी ही, परमार्थ के मुआमले में कुल्ल मालिक और उसके प्यारे संत और साध और भक्त जन की दया और मदद और सहायता, वक़्त तकलीफ़ और रंज और मौत के, दरकार होती है, और इस वास्ते उन से भी मुहब्बत और मेल रखना निहायत ज़रूरी है ॥

३—जान-पहिचान के अर्थ यह हैं कि किसी शख़्स का नाम और उसकी ताक़त और सामान और जौहर का हाल सुन कर मालूम किया कि फ़लाँ शख़्स ऐसा है, इसको "जानना" कहते हैं ॥ और जब उसकी ताक़त या सामान या जौहर से अपने तईं मदद लेने की ज़रूरत हुई, तो उस शख़्स का पता और भेद दरियाफ़्त करके, उससे चल कर मिलना, और मुहब्बत पैदा करना, इसको "पहिचानना" कहते हैं ॥

४—आम तौर पर सब लोग जानते हैं और कहते हैं कि कोई सच्चा मालिक इस रचना का है, और कुल्ल रचना उसी की ताक़त से पैदा हुई, और वही सब की सम्हाल कर रहा है, पर उनकी पहिचान सिर्फ़ ख़ासों को यानी प्रेमी और भक्त जन और साधुओं को, थोड़ी-बहुत आई, जिन्होंने अपने अन्तर में कुछ रास्ता तै करके, उसकी क़ुदरत और ताक़त और उस के नूर और जलवे को थोड़ा-बहुत देखा, और उसके चरणों से मेल और मुहब्बत पैदा की और ज़रूरत के वक़्त दया और मदद हासिल करके कृतार्थ हुए, यानी तक़लीफ़ के वक़्त उनकी सहायता मिली और भारी दुक्खों से बचाओ हो गया ॥

५—ऐसे ख़ास लोग जिनको अपने अंतर में सच्चे मालिक की थोड़ी-बहुत पहिचान आई, बहुत कम हैं। और बाक़ी जीव या तो नक़ल से मेल करते हैं, जैसे मूर्ति और निशानों के पूजने वाले, या उस मालिक की क़ुदरत और ताक़त का थोड़ा-बहुत हाल सुन कर इस क़दर जानते हैं कि कोई मालिक है, पर उसकी पहिचान कुछ भी नहीं आई, और इस सबब से, उसके चरणों की प्रीति और मुहब्बत उनके मन में नहीं पैदा होती, और उनका मालिक को इस क़दर जानना कि वह मौजूद है, क़ाबिल-ऐ-एतबार बहुत कम होता है, क्योंकि ज़रा सी बहस और हुज्जत में या वाक़ै होने कोई सख़्त या ना-गहानी तक-लीफ़ वग़ैरा में, उनकी प्रतीत जल्द डिगमिग हो जाती है और कोई-कोई विद्यावान मालिक के मौजूद होने से इन-

कार करते हैं। वे सख़्त भूल और ग़लती में पड़े हैं और इस कसर का नुक़सान आइन्दा भोगेंगे ॥

६—जो जीव अपना, इस ज़िन्दगी में और आइन्दा, भला चाहते हैं, उनको मुनासिब है कि जैसे दुनिया के कामों के वास्ते, दुनिया के लोगों से जान-पहिचान और मेल और मुहब्बत करते हैं, ऐसे ही अपने जीव के कल्याण के वास्ते सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की, जो घट २ में मौजूद हैं, जान-पहिचान, और उनके चरणों में प्रीति और प्रतीत करें, तो इस लोक में भी उनके सब कारज, जिस क़दर कि राधास्वामी दयाल मुनासिब समझें, दुरुस्त हो जावें, और आइन्दा को जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से नजात पाकर अपने निज देश में, जो कि अमर-अजर है, पूर्ण और अमर आनन्द को प्राप्त होवें ॥

७—यह जान-पहिचान, बग़ैर ख़ासों यानी पहिचान वालों से मिलने के, और उनके बचन सुनने और समझने के, और रास्ता चलने की जुगत उनसे दरियाफ़्त करके उसकी नित्य कमाई करने के, नहीं आवेगी। और इन ख़ासों का नाम संत सतगुरु और साध गुरु है। और जब तक ये न मिलें, तब तक इनके ख़ास प्रेमी सतसंगी से मिल कर भी थोड़ी-बहुत पहिचान, सच्चे मालिक की जुक्ति की कमाई करके आ सकती है ॥

८—इस वास्ते कुल्ल जीवों को, जो अपना सच्चा भला चाहते हैं, लाज़िम है कि पहले संत सतगुरु या साध गुरू का खोज करके कोई दिन उनका

सतसंग करें, और सच्चे मालिक का पता और भेद अपने घट में दरियाफ़्त करके, उसकी पहिचान और प्रतीत हासिल करने में कोशिश करें, यानी चलने की जुगत, सुरत-शब्द के अभ्यास को, लेकर हर रोज़, जिस क़दर बन सके, शौक़ और मेहनत के साथ उसकी कमाई करें, तो कोई दिन में थोड़ा-बहुत जलवा अंतर में नज़र आवेगा और उस सच्चे मालिक की दया और रक्षा के परचे अंतर और बाहर देख कर, उस की प्रतीत और मेहर की परख और पहिचान आवेगी, और फिर, दिन २ प्रीति चरणों में बढ़ती जावेगी और इस तौर से एक दिन सब कारज दरुस्त हो जावेगा ॥

९—नक़ल या निशान की कुछ पहिचान नहीं हो सकती और न उसकी पहिचान और प्रतीत से कुछ मदद मिल सकती है। लेकिन जो सच्चा मालिक चैतन्य और जागता देव घट-घट में मौजूद है, उसकी पहिचान और प्रतीत और प्रीति से आदमी, जाते जी, घट में, रस और आनन्द पा सकता है, और कुल बैरियों के ख़ोफ़ से नजात पाकर, अपने प्यारे मालिक के बल और भरोसे पर, निर्भय हो सकता है और आइन्दा को काल और कर्म और माया के घेर से निकल कर अपने निज देश में जा सकता है ॥

१०—ऐसे जीवों का संग हरगिज़ नहीं करना चाहिये जो कि मालिक के मौजूद होने से इन्कार करते हैं, या दिल में शक लाते हैं, या उसके चरणों में प्रीति और प्रतीत करना ज़रूर नहीं समझते हैं, और जो संसार के पदार्थ और

इन्द्रियों के भोग-विलास को बड़ी न्यामत समझ कर उनको भोगते हैं, और उन्हीं के हासिल करने के लिए उम्र भर यत्न करके मुफ़्त जान दे देते हैं। ऐसे जीवों का जन्म-मरण कभी नहीं छूटेगा और वे, अपनी करनी का फल ऊँची-नीची योनियों में भोगते रहेंगे। और जो कोई उनका संग करेगा और बचन मानेगा, वह भी इसी तरह, उनके मुआफ़िक़, दुख-सुख भोगता रहेगा ॥

बचन उन्चासवाँ

सच्ची और पक्की प्रतीत और पहिचान सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की, और अर्थ शब्द "गुरु अचरज खेल दिखाया"

१—प्रतीत और यक़ीन, यानी एतबार और एतक़ाद पर कुल कामों का दार-ओ-मदार है, चाहे वे काम परमार्थी होवें या स्वार्थी, यानी प्रतीत और एतबार मुआफ़िक़ मकान की नीव के हैं और बाक़ी कार्रवाई ऊपर की इमारत है। जो नीव दुरुस्त और मज़बूत नहीं है, तो ऊपर की इमारत भी पायदार और मज़बूत नहीं हो सकती। इस वास्ते, हर एक परमार्थी को चाहिए कि पहिले प्रतीत की सम्हाल और मज़बूती करे, तब परमार्थ का काम दुरुस्त चलेगा ॥

२—जैसे कि कोई शख़्स किसी से कहे कि तुम्हारे घर में फ़लानी जगह ख़ज़ाना गड़ा हुआ है, और वह उसका यक़ीन लाकर उसी वक़्त से उस मकान की, बहुत होशि-

यारी के साथ, हिफ़ाज़त रखता है और उस जगह को खोदना शुरू करता है ताकि जो ख़ज़ाना वहाँ रक्खा है, निकाल कर उससे फ़ायदा उठावे ॥

३—जैसे कि कोई शख़्स किसी से कहे कि तुम्हारे घर के फ़लाने हिस्से या मकान में साँप है, और वह शख़्स उसकी प्रतीत करके जब तक कि सर्प को निकाल न लेवे, तब तक आप भी ख़ौफ़ करके उस मकान में नहीं जाता है और अपने कुटुम्बियों को भी उस मकान में नहीं जाने देता है, और वह यत्न और तदबीर करता है कि जिससे, जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, सर्प निकाला जावे और उसका ख़ौफ़ जाता रहे ॥

४—जैसे कि कोई शख़्स किसी को ख़बर देवे कि फ़लाने दिन या रात को उसके घर में चोर आने वाले हैं और वह शख़्स उस बात की प्रतीत करके उसी दिन से बन्दोबस्त अपने मकान की हिफ़ाज़त का करता है, और रात को बराबर होशियार और जागता रहता है, और जिस क़दर आदमी जमा कर सकता है, उनको अपने मकान पर मौजूद रखता है, और हर वक़्त चोरों का ख़्याल रख कर अपने मकान और असबाब की हिफ़ाज़त से नहीं चूकता है ॥

५—इसी तरह, जब कोई जीव संत सतगुरु राधास्वामी दयाल के सतसंग में आया और उसने राधास्वामी मत का निर्णय और राधास्वामी नाम और धाम का भेद और सिफ़त, चित्त से सुन कर, उसकी समझौती और प्रतीत

हासिल की, यानी इन सात बातों का यक़ीन उसके मन में अच्छी तरह से आया कि :—

(क) राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व-समर्थ और परम चैतन्य और पूर्ण आनन्द और दयाल स्वरूप हैं ॥

(ख) राधास्वामी दयाल के चरणों से जो आदि धार निकली, वही आदि-शब्द की धार है, और वही कुल रचना की कर्ता है यानी वही धार जगह २ ठहरती हुई और मंडल बाँध कर रचना करती चली आई है ॥

(ग) उसी चैतन्य धुन और धार का नाम सुरत है, और वही धार पिंड यानी देह में उतर कर जीव कहलाई ॥

(घ) उसी धुन और धार को पकड़ कर, जीव ऊपर को चढ़ कर और, एक दिन, अपने निज स्थान यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर, परम आनन्द को प्राप्त हो सकता है, और इसी चढ़ाई का नाम सुरत-शब्द योग है ॥

(ङ) माया और ब्रह्म (जिसको काल-पुरुष भी कहते हैं) सत्तलोक के नीचे से प्रकट हुए। और ब्रह्मांड में निर्मल माया, और पिंड में मलीन माया की रचना है। और जब तक जीव इन दोनों के घेर में रहेगा, तब तक देहियों के साथ दुख-सुख और जन्म-मरण भोगता

रहेगा, यानी जब तक कि सत्तलोक में, जो निर्माया देश है, नहीं पहुँचेगा, तब तक काल-क्लेश से छुटकारा नहीं होगा और पूर्ण और अमर आनन्द को प्राप्त नहीं होगा ॥

(च) यह दुनिया परदेस है और जिस क़दर सामान और भोग-बिलास यहाँ पर काल और माया ने रचे हैं, और भी जितने कि जीव के इस दुनिया में देह के संगी हैं, वे सब इसकी तवज्जह और ख़्वाहिश को अपनी तरफ़ खैंच कर, दिन-दिन, उसको अपने निज घर की तरफ़ से, यानी राधास्वामी दयाल के चरणों से, दूर डालते हैं। इस वास्ते इनमें केवल ज़रूरत के मुवाफ़िक़ बर्ताव करना और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ ही हर एक से प्रीति-भाव रखना मुनासिब है। और मुख्य तवज्जह अपनी राधास्वामी दयाल के चरणों में लगाना ज़रूर और फ़ायदेमन्द है ॥

(छ) सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल को अपना सच्चा माता-पिता और रक्षक समझ कर, उनके चरणों की ओट और शरण लेकर, कार्रवाई परमार्थ की शुरू करना, और जिस क़दर तवज्जह और मेहनत हो सके, उनकी दया के बल और भरोसे के आसरे करना ॥

६—तो अब उसको मुनासिब और लाज़िम हुआ कि काल और माया के घेरे से, जिस क़दर जल्दी बन सके, निकल कर, अपने निज देश में, यानी अपने सच्चे माता और पिता राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर अमर आनन्द को प्राप्त होवे, और देहियों के दुख-सुख और जन्म-मरण से अपना बचाओ करे।

७—मालूम होवे कि राधास्वामी मत में, ऊपर को लिखी हुई सात बातों का निर्णय इस तौर से किया जाता है कि जीव उस कैफ़ियत और हाल को अपने अंतर में, और भी हर एक देह में, निरख और परख कर, उसकी प्रतीत कर सकता है। किसी किताब या ग्रन्थ या किसी पिछले महात्मा के बचन की गवाही नहीं दी जाती है, बल्कि कुल क़ुदरत और रचना, जिस क़दर कि नज़र आती है, उन बातों की गवाही और सबूत देती है। और जो कोई चाहे, थोड़े दिन संतों की युक्ति का अभ्यास करके, अपने अंतर में उसका फल और नतीजा देख कर, सबूत इस बात का कि सिवाय सुरत-शब्द मार्ग के, और तरह सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होगा, हासिल कर सकता है।

८—फिर जब कि बुद्धि को समझ से, और अन्तर में थोड़ा अभ्यास करके, जिस जीव को थोड़ा-बहुत यक़ीन राधास्वामी मत का हासिल हुआ, तब उस पर फ़र्ज़ हुआ कि अब होशियार होकर, और इस दुनिया को परदेस और धोके की जगह समझ कर, अपने वतन की तरफ चलने की

युक्ति की कमाई, तवज्जह और कोशिश के साथ, रोज़मर्रा करता रहे ॥

९—जिस किसी को सतसँग करके ऐसा यक़ीन हासिल हुआ जैसा कि दफ़ा (२) और (३) और (४) में लिखा है, वह तो फौरन भेद रास्ते का, और युक्ति चलने की लेकर, निहायत शौक़ के साथ अभ्यास करना शुरू कर देगा, और जो परहेज़ और संयम दरकार हैं, उन को दुरुस्ती और सचौटी के साथ अमल में लावेगा, और दुनिया और उसके कारोबार में मुनासिब और ज़रूरी तौर पर बर्ताव करेगा, और एहितयात रक्खेगा कि किसी चीज़ या मुआमले में उसका फँसाओ और गिरिफ़्तारी न हो जावे ॥

१०—यहाँ पर इस बात का बयान करना ज़रूरी है कि राधास्वामी मत में घरबार या उद्यम यानी रोज़गार और पेशे का छोड़ना ज़रूरी नहीं है। यानी जो जीव अपना परमार्थ सच्चे तौर पर बनाना चाहे, वह, बग़ैर छोड़ने घरबार और कुटुम्ब-परिवार और अपने पेशे और रोज़गार के, यह कार्रवाई कर सकता है। लेकिन शर्त यह है कि उसके मन में शौक़ और प्रेम राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँचने का, और इस दुनिया और देह की तकलीफ़ों से छूटने का सच्चा और तेज़ होवे, तो किसी क़दर तवज्जह और वक़्त इस तरफ़ लगाने से उसका काम आहिस्ता २ और दुरुस्ती के साथ बन सकता है ॥

११—हर एक शख़्स को, जो कि शौक़ के साथ सतसंग में शामिल होकर दो-तीन रोज़ बराबर बचन सुने, और

ग़ौर से उनको विचारे, और अपने में और कुल रचना में उनकी क़ैफ़ियत और हालत मुलाहिज़ा करे, तो उसको ज़रूर औसत दर्जे की प्रतीत उन सात बातों की, जिनका ज़िक्र ऊपर किया गया है, आ सकती है। पर जो कि सब जीवों का मन, युगान-युग और जन्मान-जन्म से कारबाई दुनिया की करता हुआ, और इन्द्रिय द्वारे भोगों का रस लेता चला आया है, और अनेक तरह के कारोबार, ज़रूरी और फ़िज़ूल, उसने अपने ज़िम्मे ले लिए हैं, इस सबब से, उसको इस क़दर फ़ुरसत और मौका नहीं मिलता कि जो बचन परमार्थी सुने हैं, उनको विचार कर, अपना इरादा अभ्यास करने का मज़बूत करके कारवाई शुरू कर दे। या यह कि निन्दकों की झूठी-सच्ची बातें उसके मन को भ्रमा कर उस प्रतीत को, जो बचनों के सुनने से थोड़ी-बहुत आई है, डिगमिग कर देते हैं, या यह कि घर वाले और कुटुम्बी और यार-आशना और बिरादरी के लोग तान और तँज़ और धमकी और सड़की के बचन सुना कर, इसके मन को भ्रमा देते हैं, और उस प्रतीत को, जो थोड़ा-बहुत आई है, ठहरने नहीं देते, और तरह २ के खौफ़ दिला कर परमार्थी कारवाई करने से उसको बाज़ रखते हैं॥

१२—पर जानना चाहिए कि इन सब हालतों में, इस शख़्स की समझ और विचार और शौक़ और खौफ़ की कसर है। जो इसको सच्चा शौक़ होवे या सच्चा खौफ़ मौत और दुखों का, इसके दिल में पैदा होवे, तो यह उन सब बातों का, जो कि निंदक और निपट संसारी लोग अपनी

अनजानता से बनाते हैं, सतसंग में बैठ कर निर्णय कर सकता है, और तब, उन बातों का गलत और झूठा होना उसको साफ़ ज़ाहिर हो सकता है। और यह भी उसको रोशन हो जावेगा कि यह सब लोग, असल में, उसके जीव के कल्याण के विरोधी हैं और उस को परमार्थी कार्रवाई से बाज़ रखते हैं और ऐन अदावत उसके साथ कर रहे हैं। यानी वे सब अपनी जान के दुश्मन हैं और ऐसा ही दुश्मनी उसकी जान के साथ भी करते हैं। फिर ऐसे आदमियों की बातचीत और हरकत बेजा पर, अपने जीव के कल्याण की कार्रवाई को मुलतवी करना या छोड़ देना, इस शख़्स की भी भारी नादानी और ग़फ़लत का सबब है। और उसकी समझ-बूझ और विचार और निर्णय का भी ऐतबार नहीं हो सकता, क्योंकि जो इन क़ुव्वतों को वह काम में लाता तो हरगिज़ नादान और ज़ाहिर-बीं, यानी ऊपरी दिखावे के लोगों की बात पर अमल नहीं करता। ऐसे लोगों को प्रतीत, जो थोड़ी-बहुत वक़्त सतसंग के मालूम होती है, वह दबाओ और दिखावे की है और वह सतसंग से अलेहदा होते ही जाती रहती है। और इस सबब से, वे कुछ कार्रवाई परमार्थी नहीं कर सकते॥

१३—प्रतीत उन्हीं शख़्सों की सही और दुरुस्त है कि जो उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई शुरू कर दें॥

१४—जब कि परमार्थी कार्रवाई यानी अभ्यास, अन्तर और बाहर, शुरू किया जावेगा, तो अभ्यासी को अंतर में थोड़े-बहुत पर्चे ज़रूर मिलेंगे, और कुछ रस और आनन्द

भी आवेगा, जिससे कि उसका यक़ीन इस बात का कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल सर्व-समर्थ, हाज़िर और नाज़िर हैं, और सिवाय मन और सुरत के अन्तर में ऊँचे देश की तरफ़ चढ़ाने के, और कोई जुगत सच्चे उद्धार की नहीं है, दिन २ बढ़ता जावेगा। और इस तरह सच्चे मालिक की पहिचान और सुरत-शब्द मार्ग की बड़ाई साबित होती जावेगी, और फिर उसी क़दर उसकी प्रीति राधास्वामी दयाल के चरणों में, और सुरत-शब्द की कमाई में बढ़ती जावेगी, और रफ़्ता २ एक दिन काम पूरा हो जावेगा ॥

१५—बिना पहिचान के, प्रीति और प्रतीत का पूरा भरोसा और ऐतबार नहीं हो सकता, और यह पहिचान बाहर के सतसंग और अन्तर के अभ्यास से आवेगी और दर्जे-ब-दर्जे बढ़ती जावेगी ॥

१६—सच्ची और पूरी प्रतीत की महिमा बहुत भारी है। जिस वक़्त जिस किसी को भाग से ऐसी प्रतीत आ गई, उसका उसी वक़्त से काम बनना शुरू हो गया। बल्कि जो सच कहा जावे, तो उसी वक़्त काम बन गया। यानी जिस वक़्त कि उसको सच्चे और कुल मालिक का हाज़िर और नाज़िर होने का दिल में यक़ीन हुआ, उसी वक़्त से उसके मन और इन्द्रियों की हालत बदल गई, कि वे फिर ना-मुनासिब चाहें और ना-मुनासिब कामों में रुजू नहीं करेंगे और अपने मालिक को हरदम अपने संग मौजूद समझ कर उसके चरणों में गहरी प्रीति लावेंगे ॥

१७—देखो, जब बाप बैठा है या उस्ताद या हाकिम

मौजूद है, उस वक़्त लड़के या नौकर कोई काम ख़िलाफ़ उनकी मर्ज़ी और हुक्म के नहीं कर सकते, और न खेल-कूद और ना-मुनासिब कामों की तरफ़ तवज्जह करते हैं। और जब ये तीनों नज़र से हट गये, तो उसी वक़्त लड़कों और नौकरों का मन बे-ख़ौफ़ होकर चाहे जिस काम में लग जाता है। इसी तरह परमार्थी जीव का मन, जब वह अपने सच्चे माता-पिता और मालिक और सतगुरु राधास्वामी दयाल को हर दम हाज़िर और नाज़िर देखता है, तब किस तरह, और कामों में, सिवाय उनके जो राधास्वामी दयाल को पसन्द हैं, जा सकता है ? और सिवाय उनके और कौन ऐसा ज़बर है कि जिस में विशेष और गहरी प्रीति करेगा ? जब ऐसी हालत मन की हो गई, तब और क्या करना बाक़ी रह गया ? ऐसे परमार्थी जीव बहुत जल्द अभ्यास की मदद से रास्ता तै करते हुए अपने निज घर में यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के सन्मुख पहुँच कर अपना काम पूरा कर सकते हैं ॥

१८—जिस क़दर कार्रवाई परमार्थ की की जाती है, उस सब का मतलब यही है कि अभ्यासी को गहरी प्रतीत और प्रीति सच्चे मालिक के चरणों में हासिल होवे। तब उसका अभ्यास, सुरत के चढ़ाने का, सहज और सुखाला बनता जावेगा। और जब तक कि प्रतीत और प्रीति में कसर है, उसी क़दर मन और इन्द्रियाँ भी डावाँ-डोल रहती हैं और अभ्यास भी जैसा चाहिए, वैसा दुरुस्ती के साथ नहीं बनता। इस वास्ते कुल परमार्थियों को

मुनासिब है कि अंतर और बाहर सतसंग करके, अपनी प्रतीत और प्रीति को मज़बूत करें, और दिन २ बढ़ाते जावें, तो उनको अभ्यास का भी रस आता जावेगा और मन और इन्द्रियाँ भी सहज में भोगों की तरफ़ से किसी क़दर हट कर, अन्तर में शब्द और स्वरूप के आसरे उलटती जावेंगी, और राधास्वामी दयाल की दया और रक्षा और क़ुदरत के पर्चे मिलते जावेंगे कि जिनसे प्रीति और प्रतीत दिन-दिन बढ़ती जावेगी और एक दिन काम पूरा हो जावेगा ॥

१६—अभ्यासी को चाहिए कि मन और माया और काल और कर्म के चरित्रों और झकोलों से होशियार रहे। ये सब, अभ्यासी को, अपने पदार्थ और तमाशे पेश करके रास्ते में रोकना और अटकाना चाहते हैं। सो जो कोई सतगुरु राधास्वामी दयाल को अगुआ करके, और उनकी दया का बल लेकर चलेगा, उस पर किसी का ज़ोर या छल पेश नहीं जावेगा, और आख़िर सब थक कर रास्ते में रह जावेंगे, और वह मैदान जीत कर उनके घेर से, सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया से निकल कर, बे-खौफ़, अपने निज देश में पहुँच जावेगा ॥

२०—मालूम होना चाहिए कि प्रतीत के दो दर्जे हैं। पहिले दर्जे की प्रतीत तवज्जह के साथ बचन सुन कर, और बुद्धि से ग़ौर के साथ विचार और निर्णय करके हासिल होती है। यह प्रतीत सतसंग के बचनों का रस देने वाली और अन्तर में अभ्यास शुरू कराने वाली है।

और दूसरे दर्जे की प्रतीत वह है कि जो अन्तर में अभ्यास करके रस और आनन्द और दया और मेहर के पर्चे पाकर मज़बूत होती जावे ॥

२१—यह दूसरे दर्जे की प्रतीत अडिग्ग है और इसको किसी क़िस्म के झकोले, मन और इन्द्रियों के, या निन्दक और विरोधी जीवों के, घटा नहीं सकते, बल्कि ज़्यादा मज़बूत और पक्का करते हैं, क्योंकि अभ्यासी को अपने अन्तर को कार्रवाई का नतीजा और राधास्वामी दयाल की दया और रक्षा मुलाहज़ा करके, इस क़दर ताक़त हासिल हो जाती है कि वह, मन और इन्द्रियों की चाल-कुचाल और निंदक और विरोधी जीवों की बात-चीत और हाल को समझ कर, फ़ौरन होशियार हो जाता है, और इनको काल का विघ्न जान कर, अपने सतसंग की समझ के बल से, इनका मुंह तोड़ देता है, और फिर आइन्दा, वे ऐसी हरकत उसके साथ रोज़-ब-रोज़ कम करते हैं, बल्कि शर्मा कर और थक कर चुप हो जाते हैं, और फिर यह प्रतीत अभ्यास की, दिन-दिन बढ़ती और गहरी होती जाती है, और एक दिन सच्चे और कुल मालिक के दर-बार में पहुँचा देती है ॥

———

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१ शब्द १६ के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

कड़ी

गुरु अचरज खेल दिखाया । सुर्त नाम रतन घट पाया ॥ १ ॥

अर्थ—गुरु ने दया करके अचरज रूपी खेल घट में दिखाया । सुरत का नाम-रूपी रत्न यानी दसवें द्वार का शब्द प्राप्त हुआ ॥

कड़ी

बकरी ने हाथी मारा । गउ कीन्हा सिंह अहारा ॥ २ ॥

अर्थ—सुरत ने मन को जीता और फिर सुरत ने काल को मारा ॥

कड़ी

चींटी चढ़ गगन समाई । पिंगला चढ़ पर्वत आई ॥ ३ ॥

अर्थ—सुरत चढ़ करके गगन में पहुँची । जो मन कि दौड़ना यानी चंचलता छोड़ कर निश्चल हो गया, वही पर्वत पर चढ़ गया, यानी त्रिकुटी में पहुँचा ॥

कड़ी

गूँगा सब राग सुनावे । अन्धा सब रूप निहारे ॥ ४ ॥

अर्थ—जो शख़्स कि दुनिया की तरफ़ और अंतर में बोलने से चुप हुआ, वही शब्द की धुनें सुनने लगा । और जिस किसी ने बाहर से अपनी दृष्टि बन्द की, वही अंतर में रूप देखने लगा ॥

कड़ी

मक्खी ने मकड़ी खाई । भुन्गे ने धरन तुलाई ॥ ५ ॥

अर्थ--मक्खी नाम सुरत का है जो मकड़ी यानी माया के घेर में जब तक थी, उसका खाजा हो रही थी, और जबकि दसवें द्वार की तरफ़ उलट कर पहुँची तब माया को निगल गई। भुन्गे यानी जीव या सुरत ने, सूक्ष्म शरीर को समेट कर आकाश में उठा लिया ॥

कड़ी

धरती चढ़ वृक्षा बैठी । पक्षी ने पवन चुगाई ॥ ६ ॥

अर्थ-सुरत चढ़ करके त्रिकुटी में पहुँची। मन जो कि सैलानी था, जब चढ़ कर त्रिकुटी में पहुँचा, तब प्राण पवन को निगलता चला गया ॥

कड़ी

जंगल में बस्ती व्याई । बस्ती सब खिलक़त खाई ॥ ७ ॥

अर्थ--बस्ती यानी रचना, और रचना करने वाली नाम सुरत का है, सो उसने पिंड रूपी जंगल में उतर कर रचना की, और फिर जब उलट कर त्रिकुटी या दसवें द्वार में पहुँची, तब पिंड और ब्रह्मांड की रचना को निगल गई यानी समेट गई ॥

कड़ी

मूसे से बिल्ली भागी । पानी में अगिनी लागी ॥ ८ ॥

अर्थ--चढ़ने वाली सुरत को देख कर माया हट गई। अमी की धार जो सहसदलकँवल के मक़ाम पर आई, वही ज्योति स्वरूप होकर रोशन हो रही है और वही माया का स्वरूप है और वही अग्नि है ॥

कड़ी

कउवा धुन मधुरी बोले । मेंडक अब सागर तोले ॥ ९ ॥

अर्थ—जो मन कि पहले कड़ुवा वाक्य बोलता था, और अपने मतलब के लिए औरों को दुःख देता था, वही त्रिकुटी में चढ़ कर, मीठी बोली के साथ, राग-रागिनी सुनाता है। पिंड में नीचे का मन जो मेंडक के मुआफ़िक़ थोड़ी ही हद में उछलता-कूदता था, त्रिकुटी में चढ़ कर भौसागर की तौल और नाप करता है ॥

कड़ी

मूरख से चतुरा हारा । धरती में गगन पुकारा ॥ १० ॥

अर्थ—मन जो कि पिंड में बैठ कर मूर्खता से भोगों में फँस रहा था, जब गुरु कृपा से घट में चढ़ कर त्रिकुटी में पहुँचा, तब काल, जिसने चतुराई करके जाल बिछाया था, उससे हार गया और फिर धरती, यानी पिंड में, त्रिकुटी से शब्द की धुनें फैलीं ॥

कड़ी

राधास्वामी उलटी गाई । उल्लू को सूर दिखाई ॥ ११ ॥

अर्थ—राधास्वामी ने सुरत और मन के उलटने का यह हाल वर्णन किया, और जो जीव कि उल्लू के मुआफ़िक़ ब्रह्म रूपी सूरज का दर्शन नहीं कर सकते थे, उनको त्रिकुटी में चढ़ा कर ब्रह्म का दर्शन कराया ॥

बचन पचासवाँ

राधास्वामी अथवा संत मत की निंदा का सबब, और निन्दकों का हाल

१—मालूम होवे कि संत अथवा राधास्वामी मत

(१) केवल प्रेम का मार्ग है, और (२) इस मत में अभ्यास अन्तर के अन्तर मे यानी निज घट में किया जाता है, और (३) बाहर सिवाय सतगुरु या साध के सतसँग के, और सतगुरु और साध प्रेमी जन की सेवा के, और कोई रस्म या किसी क़िस्म का बर्ताओ और व्यवहार जारी नहीं है, और (४) जो अभ्यास कि इस मत में कराया जाता है वह मन और रूह यानी सुरत के साथ किया जाता है, और (५) इष्ट और निशान सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों का, ऊँचे से ऊँचे देश में बाँध कर, और शब्द की डोरी (जिसकी धुन घट-घट में हर दम और हर वक़्त हो रही है) पकड़ कर, मन और सुरत को चढ़ाया जाता है, ताकि महा निर्मल और निर्माया, परम चैतन्य के देश में पहुँच कर, सुरत, अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के चरणों का दर्शन पाकर अमर और अजर आनन्द को प्राप्त होवे, और काल और माया के जाल और कष्ट और क्लेश और जन्म-मरण के दुख-सुख से पूरी और सच्ची रिहाई पावे, और (६) इसी नज़र से अभ्यासी को, शुरू से, धुर पद में पहुँचने और अपने सच्चे और कुल मालिक के चरणों के दर्शन की प्राप्ति की अभिलाषा और आशा बँधवाई जाती है, और दूसरी इच्छा की ख़्वाहिश का, चाहे किसी किस्म की होवे, अभाव कराया जाता है, और (७) संसार और उसके भोग-बिलास और माया के सामान और पदार्थों की तरफ़ से, उनकी नाशमानता और तुच्छ क़ीमत और क़दर समझा कर, सच्चे परमार्थी के चित्त

The amo
service o
attractin

Trans

में थोड़ा-बहुत सच्चा वैराग दिलाया जाता है, और (८) सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु अथवा साधगुरु के चरणों की सच्ची प्रीति और इस तरह की प्रतीत दिल में पैदा की जाती है कि वे हर वक़्त परमार्थी जीव के अंग-संग और अंतर में हाज़िर और नाज़िर और हर दम रक्षक और सहाई मौजूद हैं, और यह कि प्रीति और प्रतीत सिर्फ़ ज़बानी बातों और उपदेश से नहीं आती है, बल्कि थोड़ा-बहुत अभ्यास, सुरत-शब्द मार्ग का, करके और अंतर में आनन्द और रस और परचे पाकर आप ही आप सच्चे अभ्यासी के हृदय में जागती है और दिन-दिन बढ़ती और पकती जाती है। और उसके साथ ही अभ्यासी की हालत और उसका बर्ताओ और व्यवहार भी थोड़ा-बहुत अन्तर और बाहर बदलता जाता है। यानी कुल्ल मालिक और सतगुरु और सतसंग में प्रीति ज़्यादा होती जाती है, और उसी क़दर संसार और संसारियों से मेल-मिलाप कम होता जाता है।

२—अब मालूम होवे कि यही सबब है कि राधास्वामी मत के सच्चे परमार्थी जीवों से, संसारी जीवों का मेल दिन-दिन कम होता जाता है और ऐसी हालत उनकी, यानी संसार के भोग-बिलास और नामवरी और धन और स्त्री और औलाद में उनकी तवज्जह कम देख कर, संसारी जीव अचरज करते हैं और घबरा जाते हैं कि कहीं ऐसा न होवे कि रफ़्ता-रफ़्ता वह परमार्थी जीव घरबार छोड़ कर दुनिया से क़तई अलेहदा हो जावे, और जो मतलब उनका उससे

बरामद होता है, वह ख़ब्त हो जावे। इस वास्ते, तरह-तरह के यत्न और उपाय सोचते हैं कि जिससे उस परमार्थी की प्रीति और प्रतीत में ख़लल आ जावे और वह राधास्वामी मत को छोड़ देवे या यह कि सतसंग में जाना मौक़ूफ़ कर देवे। और जो उनका कहना कुछ उस पर उसर नहीं करता है, तो अनेक तरह के इल्ज़ाम सतसंग और सतसंगियों और सतसंगिनों पर लगा कर, और अपने मन से नई-नई हिजो की बातें पैदा करके, मशहूर करते हैं और उनको बदनामी देते हैं, और धमकाते हैं, और डराते हैं, कि इसी शर्म और ख़ौफ़ के मारे वह सतसंग छोड़ देवे, और जो जीव कि अभी सतसंग में शामिल नहीं हुए हैं, वे ख़ौफ़ और बदनामी के सबब से, वहाँ के जाने और शामिल होने से परहेज करें और रुक जावें॥

३—अनेक तरह की निन्दा की बातें जो ये लोग बनाते हैं और मर्दों और औरतों को बे-तक़ल्लुफ़ सुनाते हैं, इस जगह तफ़सील के साथ कहना फ़िज़ूल समझ कर सिर्फ़ दो-चार बातें कि जिन पर ये साहब ज़्यादा ज़ोर देते हैं, लिखी जाती हैं कि जिससे सच्चे परमार्थी को ख़ास कर, और आम परमार्थियों को भी, उन बातों की असलियत मालूम हो जावे कि आया वे निन्दा में दाख़िल हो सकती हैं, या ऐन परमार्थ की चाल हैं, और भक्ति मार्ग में ज़रूर दरकार हैं और पुराने से पुराने वक़्तों से सब मतों में जारी है।

४—पहिला, ज़ात-पाँत का भेद—परमार्थ में आम

तौर पर, और भक्ति मार्ग में ख़ास कर, ज़ात-पाँत का भेद करना पाप में दाखिल है। यह क़ौल है कि—

जात पाँत पूछे नहिं कोय, हर को भजे सो हर का होय ॥

बड़े-बड़े महात्मा जो पिछले वक़्त में हुए, और जिनको कुल हिन्दू बड़ा मानते हैं, जैसे वशिष्ठ जी और व्यास जी और नारद जी और सूत पैरानिक। अब मालूम करो कि इनकी क्या ज़ात थी। वशिष्ठ जी गनिका (कसबी) के पुत्र थे, व्यास जी मच्छोदरी (मछली पकड़ने वाले की लड़की) के, और नारद जी और सूतजी दासी (लौंडी) के सुत थे। फिर परमार्थ की कमाई करके इनकी इस क़दर महिमा बढ़ी कि अब तक इनको सब कोई बड़ा मानते हैं। और अपने वक़्त में, ये, बड़े-बड़े महात्माओं के गुरू हुए और उनके बचन और बानी अब तक सब लोग मानते हैं और भाव के साथ पढ़ते हैं और सुनाते हैं ॥

५—भीलनी कैसी नीची जात की थी, मगर आप महाराज रामचन्द्र जी ने उसके झूंठे बेर खाये, और जिन पंडितों और भेषों ने कि उसका, नीची ज़ात के सबब से निरादर किया था, उन्हीं से, महाराज ने उसका आदर और भाव करवाया, और उसी के चरण, ताल में घुलवा कर, उसके जल को, जो सड़ गया था, शुद्ध कराया ॥

६—सुपच भक्त को जो जात का भंगी था, कृष्णचन्द्र महाराज ने पाँडवों के यज्ञ में, युधिष्ठिर जी को भेज कर, बड़ी महिमा और आदर के साथ बुलवा कर, और द्रोपदी

के हाथ से रसोई बनवा कर, चौके में बिठला कर, भोजन करवाया, तब घंटा बजा और यज्ञ सुफल हुआ ॥

७—महाराज कृष्णचन्द्र ने अहीर के घर में परवरिश पाई और ग्वालों के संग, अर्से तक, उनका बर्ताओ रहा, और अब, सब जात के लोग उनकी पूजा करते हैं और उनकी प्रशादी और चरणामृत मन्दिरों में लेते हैं। रामचन्द्र जी महाराज जाति के क्षत्रिय थे। उनकी भी पूजा तमाम ज़माने में जारी है ॥

८—सिवाय इनके, बहुत से भक्त, हिन्दू और मुसलमान, कलियुग के ज़माने में पैदा हुए, और उनमें से अकसरों की पूजा और भाव जगह-जगह जारी है। और कबीर साहब जात के जुलाहे यानी कोली, बनारस (वाराणसी) में, और पलटू साहब जात के बनिया, अयोध्या में, और दादू साहब जात के धुनिया, राजपूताने में, और ग़रीब दास जी, जात के जाट, बाँगर में, और नानक साहब, जात के खत्री, और नामदेव छीपी, और सेना नाई, और सरवर सुल्तान, मुल्क पंजाब में, और चैतन्य स्वामी, बंगाल में, और गूँगा पीर जो पहिले क्षत्रिय थे और फिर पीछे मुसलमान हो गये, और मैनपुरी के ज़िले में जखइया भंगी, और अमरोहा और जलेसर में मियाँ साहब, और आगरे में कमालखाँ, और कुएँ वाला भंगी मसानिया, और जाहिर पीर मुसलमान, और बूढ़ाबाबू धोबी, और ख़्वाजाजी अजमेर में, और अनेक भक्त और अनेक भूत-प्रेत, जगह-जगह, सर्व जात वाले पुज

रहे हैं। यह हाल सिर्फ़ इस मुल्क में ही नहीं है, बल्कि तमाम पृथ्वी पर यही दस्तूर भक्तों, और भी भूत-प्रेतों की पूजा का जारी है ॥

९—विलायतों में जगह २ भक्तों के और शहीदों के मज़ार बने हुए हैं जहाँ हर साल एक या दो दफ़े हर जगह मेले होते हैं और सैकड़ों कोसों से लोग दर्शन के वास्ते आते हैं और भेंट-पूजा करते हैं और दुआयें माँगते हैं ॥

१०—इस मुल्क यानी हिन्दुस्तान में भी कोई ऐसा प्रदेश नहीं है, जैसे पंजाब, गुजरात, दक्षिण, राजपूताना, बंगाल और हिन्दुस्तान ख़ास, यानी अम्बाले से लगाकर बनारस तक, और उड़ीसा वग़ैरा, कि जहाँ ऐसे स्थान न होवें और पूजा जारी न होवे। हज़ारहा हिन्दू-मुसलमान, भक्तों और फ़क़ीरों और शहीदों की ज़ियारत और पूजा के वास्ते जाते हैं ॥

११—सिवाय मालिक के भक्तों के, और बहुत से कम-ज़ात देवता और सिद्ध और भूत-प्रेत बने हुए, जा-ब-जा पुज रहे हैं और कोई मर्द या औरत या पंडित या ब्राह्मण या भेष ऐसी पूजा पर तान नहीं मार सकते हैं, बल्कि आप उस पूजा में शामिल होते हैं, और जो चीज़ें कि उनके देखने और छूने के क़ाबिल नहीं हैं, उनमें बे-तक-ल्लुफ़ बर्तते हैं, जैसे सुअर के बच्चे और बकरे और भैंसे कटवाते हैं, और शराब की बोतल भोग में ले जाते हैं, और ख़ून का टीका माथे पर लगवाते हैं, और गोश्त का प्रशाद बँटता है ॥

१२—जो लोग कि वेद और शास्त्र की पक्ष करते हैं, और उनको कभी आँख से भी नहीं देखा और न पढ़ा और सुना, उन्हीं के घरों में, ऊपर की लिखी हुई नाक़िस पूजा जारी हैं। और वहाँ वे दम भी नहीं मार सकते, बल्कि जोरू और लड़कों के साथ, आप उस नाक़िस पूजा में शामिल होते हैं और जो प्रशाद वहाँ तक़सीम होता है, वह माँग २ कर लेते हैं और अपने बच्चों को खिलाते हैं ॥

१३—दूसरा, प्रशादी देने और लेने पर एतराज़। ज़ाहिर है कि यह रस्म गुरु की प्रशादी लेने की सब मतों में क़दीम से जारी है। और उसी मुआफ़िक़ मंदिरों में प्रशादी और चरणामृत बाँटने का दस्तूर जारी है। अब समझना चाहिए कि जिस वक़्त, वे महात्मा जिन की मूर्ति कि मन्दिर में पधराई गई है, मौजूद होंगे, तो उस वक़्त, वे भोग लगा कर यानी झूंठा करके प्रशाद सेवकों और भाव वालों को बाँटते होंगे, क्योंकि वे अपने बक़्त के गुरु और मालिक से मिलने का रास्ता बताने वाले थे ॥

१४—इसी तरह से हर एक स्थान पर जहाँ कि महात्मा और भक्तों की समाध या कोई निशान मौजूद है, और उसके दर्शन और पूजा के वास्ते सैकड़ों कोसों से लोग आते हैं, तो वहाँ पर भी प्रशाद ब-दस्तूर बाँटा जाता है। और बाँटने से पहले, ध्यान करके, उन महात्माओं को भोग लगाया जाता है। तो अब विचारना चाहिए कि जिस वक़्त वे महात्मा ज़िन्दा थे, उस वक़्त उनके भाव वाले, पहले उनको खिला कर प्रशादी लेते होंगे, और उन महात्माओं की

ज़ात-पाँत का कुछ ख़्याल कोई नहीं करता होगा ॥

१५—और ज़ाहिर है कि जितने औतार और सन्त और साध और भक्त और महात्मा पिछले वक़्तों में पैदा हुए, और जिनकी पूजा आम तौर पर जा-ब-जा हर एक देश में (जैसा कि ऊपर की दफ़ा में ज़िक्र हो चुका है) जारी है, इन में से कोई भी जात का ब्राह्मण नहीं था, बल्कि बहुत से नीची ज़ातों में प्रकट हुए। पर उनकी प्रशादी गुरु-भाव करके उनकी मौजूदगी में, और भी बाद उनके चोला छोड़ने के, सब सेवक और भाव वाले जाव लेते चले आये हैं। और इस ज़माने में भी हर कोई औरत और मर्द अपने २ गुरु की प्रशादी, चाहे वे कबीर-पन्थी हैं या नानक-पन्थी या दादू-पन्थी या कोई और भेष और पन्थ में से हैं, या गुसाँई वग़ैरा, वग़ैर दरियाफ़्त करने उनकी ज़ात-पाँत के, लेते हैं, बल्कि गोकुलस्थी गुसाँइयों का उगाल भी बड़े शौक़ और भाव के साथ, गहरी भेंट और पूजा देकर, लेते हैं। और जगन्नाथ जी में हर एक ज़ात के यात्रियों की झूंठन ख़ुद वहाँ के पुजारी और पंडे और सब कोई आपस में खाते हैं और उसको प्रशाद समझ कर दूर-दूर अपने घरों में ले जाकर खाते हैं और अपने कुटुम्बियों को बाँटते हैं ॥

१६—और मथुरा-वृन्दावन में सब ज़ात वाले, मन्दिरों में एक जगह बैठ कर दाल-रोटी और कढ़ी-चावल और खिचड़ी वग़ैरा की प्रशादी खाते हैं और सखरन-निखरन का बिल्कुल भेद नहीं करते, और बहुतेरे आदमियों के हाथ

अपने मकान पर मँगवा लेते हैं, और और कभी २ गुसाईं लोग अपने आदमियों के हाथ घरों पर भिजवा देते हैं और मंदिर से अपने घरों पर भी ले जाते हैं ॥

१७—बहुतेरे लोग जो भेष नेष्ठा रखते हैं, वे कुल भेषों की, वग़ैर दरियाफ़्त करने ज़ात और पाँत के, चरणामृत प्रशादी लेते हैं और यह दस्तूर पंजाब और सिंध वग़ैरा में आम तौर पर जारी है ॥

१८—और मुसलमानों में भी गुरु का उलिश यानी झूंठन, भाव के साथ लेकर खाते हैं ॥

१९—खुलासा यह है कि गुरु और साध और महात्मा और गुसाईं और साहब-ज़ादे और हर एक पन्थ के महन्तों और गद्दी-नशीनों की प्रशादी खाना, आम तौर पर, सब देशों और सब मतों में जारी है। फिर जो लोग कि उसको बुरा समझते हैं और इसकी निंदा करते हैं, वे परमार्थ के हाल और चाल से बिलकुल बे-ख़बर हैं, और आप कुछ भी परमार्थ की करनी नहीं करते, और ज़ात-पाँत या विद्या और बुद्धि या धन और हुकूमत के मान और अहंकार में डूबे हुए हैं। फिर ऐसे लोगों की निंदा और तान और हंसी के बचनों का, सच्चे परमार्थियों को किसी सूरत में, ख़्याल करना, अपनी भक्ति और परमार्थ की कमाई में ख़लल डालना है ॥

२०—देखो तमाश-बीनों को कि मुसलमानी और ईसायन और नीच ज़ात वाली औरतों के साथ मुहब्बत करते हैं, और उनके घरों पर रात-दिन पड़े रहते हैं और

वहीं खाते-पीते हैं, या ऐसी औरतों को अपने घरों में लाकर रखते हैं। और जो उनके औलाद पैदा होता हैं, उसके साथ वैसा ही वर्तावा करते हैं, जैसा कि शादी की हुई बीबी की ओलाद के साथ बर्तते हैं। और अपनी बिरादरी और जात वालों का कुछ भी ख़ौफ़ या ख़्याल न करके, खुला-खुली ऐसे काम करते हैं, और फिर उनसे कोई कुछ नहीं कहता और न उनको ऐसे काम से रोक सकता है ॥

२१—इसी तरह, बहुत से ऊंची ज़ात वाले लोग, गोश्त और शराब खाने-पीने के वास्ते, डाक-बंगले और अंगरेज़ी होटल यानी मुसाफ़िर-घर में, जहाँ मुसलमान बावरची सब तरह का गोश्त और खाना पकाते हैं, जाकर खाना खाते हैं और बे-ख़ौफ़ इस काम में बर्ताओ करते हैं।

२२—बाज़े, गोश्तवालों की दुकान से क़लिया और कबाब खरीद करके अपने मकान पर लाकर खाते हैं। इन लोगों पर कोई बिरादरी के लोग तान नहीं मारते हैं, और न उनको इस काम से रोकने का यत्न करते हैं।

२३—और बहुतेरे ऊंची ज़ातवाले, नौकरी की हालत में, उन चीजों को, जिनका छूना उनकी बिरादरी में पाप और निहायत नापाक समझा जाता है, रोज़मर्रा अपने हाथ से उठाते और धरते हैं, और वे काम जो उन्हें नहीं करने चाहिये, हर रोज़ करते हैं, और कुछ छूत उसमें नहीं मानते। पर परमार्थ के स्थान में पहुँच कर और सच्चे परमार्थियों से बातचीत करने के वक़्त, बड़ा अहंकार अपनी ज़ात का दिखाते हैं, और अपने तईं महा पवित्र समझते हैं, और

धन के लिये, नीच से नीच जगह पर दीनता और आधीनता के साथ बर्ताओ करते हैं, लेकिन परमार्थ के फ़ायदे के वास्ते कभी सिर भी नहीं झुकाते और जो कुछ लाभ न होवे तो ऐसी जगह क़दम भी नहीं रखते हैं ॥

२४—फिर जो लोग कि गुरु-भक्ति, अपने जीव की कल्याण के वास्ते, कर रहे हैं, उनको, अपनी भक्ति की चाल के बर्ताओ में मूर्ख और नादान और परमार्थ के विरोधी जीवों की निन्दा का ख़्याल करना किस तरह दुरुस्त हो सकता है ?

२५—वेद और शास्त्र के हुक्म के मुआफ़िक़, पिछले वक़्तों में, सब जीव, पहले ब्रह्मचर्य अवस्था धारण करते थे, और उस अवस्था में बराबर गुरु के पास रह कर उनकी सेवा करते थे और प्रशादी खाते थे और ब्रह्म-विद्या पढ़ते थे और गुरु से उपहार लेकर अभ्यास करते थे। पर इस वक़्त में वह चाल बहुत कम जारी है, बल्कि बन्द हो गई है। और इस सबब से लोग गुरु और गुरु-भक्ति की महिमा से बे-ख़बर हैं और अपनी ओछी समझ और अनजानता से सच्चे परमार्थी अभ्यासियों की कार्रवाई पर तान और तिश्ना लगा कर पापी और निन्दक बनते हैं ॥

२६—अब जो कोई कि सच्चा परमार्थ कमाना चाहता है, वह ख़ुद विचार ले कि ऐसे नादान, अहंकारी और निगुरे संसारियों की बात, क़ाबिल सुनने और मानने के है या नहीं। ये लोग रात-दिन चूहों, बिल्लियों, कुत्तों,

मक्खियों, चींटियों और चिड़ियों का झूंठा खाते हैं और गुरु और भक्त जन की प्रशादी लेने वालों पर तान मारते हैं। इस जगह पर तुलसी दास जी का एक शब्द जो उन्होंने ऐसे लोगों की निस्बत कहा है, लिखा जाता है :-

ऐसी चतुरता पर छार ॥ टेक ॥
हरत पर धन धरत रुच रुच, भरत उदर अहार।
नेकहू नहिं प्रीति गुरु से, महा लम्पट जार ॥
ऐसी चतुरता० ॥ १ ॥

मात मरि है, पितहु मरि है, मरि है कुल परिवार।
जानत एक दिन हमहु मरि हैं, तऊ न तजत विकार ॥
ऐसी चतुरता० ॥ २ ॥

गुरु प्रशाद में छूत लावत, करत लोकाचार।
नारि का मुख धाय चूमत, अधर (होंठ) लिपटी लार (थूक) ॥
ऐसी चतुरता० ॥ ३ ॥

संत जन से द्रोह राखत, नात साढ़ू सार।
तुलसी ऐसे पतित जन को, तजत न कीजे बार ॥
ऐसी चतुरता० ॥ ४ ॥

२७—और एक पद दूसरा भी तुलसीदासजी ने निस्बत परमार्थ के विरोधियों के लिखा है, उसकी भी दो-तीन कड़ियाँ लिखी जाती हैं। इसमें समझाया है कि चाहे कैसे ही नज़दीक के रिश्तेदार होवें, और जो वे परमार्थ में विरोध करें तो उनको दुश्मन के मुआफ़िक़ जान कर क़तई छोड़ देवे ॥

जिनके प्रिय न राम वैदेही ॥टेक॥
तजिये तिनहिं, कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥ १ ॥

पिता तजे प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तजे, नाह (पति) ब्रजबनिता, भए जग मंगलकारी ॥ २ ॥

२८—सतगुरु राधास्वामी दयाल ने भी ऐसे बाब (बिषय) में एक शब्द फ़रमाया है जिसमें हुक्म है कि जहाँ तक बने कुटुम्बी और रिश्तेदारों से मेल रखते हुए भक्ति करे, तो इसमें दोनों का फ़ायदा होगा। लेकिन जो उनमें से कोई परमार्थ में बे-मतलब विघ्न डाले और सख़्त विरोधी मालिक के भजन और गुरु भक्ति का होवे, और इसी तरह उस पर अपना क़ाबू न चले, तो दीनता और मुलायमियत के साथ उससे अलेहदा हो जाने में किसी तरह का पाप और दोष नहीं है। क्योंकि इस बात का बड़ा ख़्याल रखना चाहिये कि मूर्ख जीव जो अपनी अनजानता से परमार्थ में विघ्न डालते हैं, उनके संग और सबब करके, किसी तरह अपनी भक्ति में ख़लल न पड़े। नहीं तो जनमानजन्म पछ-ताना पड़ेगा और उनका भी ऐसे चाल-चलन से भारी नुक़सान होगा। यानी बजाय उनके जीव के कारज होने के, सच्चे परमार्थी के संग-साथ से, उनके सिर पर निन्दक और विघ्न-कारक होने का पाप का पहाड़ चढ़ेगा। और उसके ऐवज़ में बहुत दुख उनको सहने पड़ेंगे। क्योंकि जैसे एक आदमी को सच्चे परमार्थ में लगाने का भारी पुन्य होता है, और उपकारक पर मालिक की दया आती है और उसका उद्धार जल्दी होता है, ऐसे ही परमार्थ से हटाने वाले या परमार्थ की करनी में विघ्न डालने वाले का ऐसा भारी पाप होता है कि जिसके सबब से उसको

इस जन्म में और भी आगे के जन्मों में दुख भोगने पड़ते हैं ॥

शब्द

धोका मत खाना जग आय पियारे ।
धोका मत खाना जग आय ॥ १ ॥

कोई मीत न जानो अपना ।
सब ठग बैठे फाँसी लाय ॥ २ ॥

जब सच्चा होय चले डगर गुरु ।
तबही चौंकें रोकें आय ॥ ३ ॥

ऊँच नीच कहें बचन तोख के ।
मति को तेरी दें भर्माय ॥ ४ ॥

इन से रहना समझ बूझ कर ।
हैं ये बैरी हित दिखलाय ॥ ५ ॥

तेरी हानि लाभ नहिं सोचें ।
अपने स्वार्थ रहें लिपटाय ॥ ६ ॥

तू भी चतुरा गुरु का प्यारा ।
उन संग रहु गुरु चरण समाय ॥ ७ ॥

उनको भी इस भाँति भलाई ।
तेरी भक्ति न थकती जाय ॥ ८ ॥

जो बेमुख गुरु भक्ति नाम से ।
कोई तरह क़ाबू नहिं पाय ॥ ९ ॥

तो युक्ति से दीन विधी से।
छोड़ चलो सँग दोष न ताय ॥ १० ॥
जो सन्मुख गुरु भक्ति नाम से।
होय कदाचित मेल मिलाय ॥ ११ ॥
राधास्वामी कहत बनाई।
बहुर बहुर तू भक्ति कमाय ॥ १२ ॥
भक्ति न छूटे कोई युक्ति से।
नहिं तो बहु विधि रहो पछिताय ॥ १३ ॥

२६—तीसरा, पुरुष और स्त्रियों को एक गुरु धारण करके दूसरा गुरु करना। यह निहायत कम समझ और ओछा बुद्धि वालों की बात है। वे कहते हैं कि स्त्रियों का गुरु उनका पति है, और दूसरा गुरु धारण करने की उनको ज़रूरत नहीं है। और इसी तरह से पुरुषों का गुरु वह पंडित या पुरोहित है कि जिसने उनको यज्ञोपवीत यानी जनेऊ पहिनाया। जो यही बात दुरुस्त है तो फिर परमार्थ की समझ और करनी तो ख़त्म हुई, क्योंकि पुरुष अपनी २ स्त्रियों से, सिवाय दुनिया के कारोबार के या निहायत नीचे दर्जे की सेवा और ख़िदमत के, जैसे रोटी पकाना, मकान और बर्तन साफ़ करना और लड़कों को खिलाना या अपने भोग-बिलास के, और कोई काम नहीं लेता, और न उनको परमार्थ की बात सुनाता और समझाता है। फिर ऐसे गुरु से क्या फ़ायदा परमार्थ का, या अंतर की आँख खुलने का, या मालिक की पहिचान और उसके

मुनासिब भजन और बंदगी करने का हासिल हो सकता है ? जैसे कि वह पुरुष परमार्थ और परमार्थी विद्या से ख़ाली है, ऐसे ही उसकी स्त्री भी ख़ाली रहेगी। और जो हर एक ऊँची क़ौम का दस्तूर, जो इस वक़्त में जारी है, देखा जाता है तो मालूम होता है कि बहुत सी जगह कुल्ल स्त्रियाँ, बेवा और सुहागिन, बराबर गुरु धारण करती हैं, और कहीं २ सिर्फ़ बेवा स्त्रियाँ गुरु धारण करती हैं। जो निन्दकों की यह बात सही है कि स्त्रियों को मुतलक़ गुरु करना ज़रूर नहीं, तो फिर बेवा होने पर उनको भेषों या पंडितों या साहबजादों या गुसाँइयों से क्यों उपदेश दिलाया जाता है ? उनके पति का ही उपदेश क्यों नहीं काफ़ी समझा जाता ? पर, किसी को भी अपने पति से कुछ परमार्थी मदद नहीं मिलती, नहीं तो बेवा होने पर वह उसी की कार्रवाई करती। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि उन लोगों की यह निन्दा की बातें बिल्कुल नादानी और बे-ख़बरी के सबब से हैं कि अपने और बिरादरी के घरों के हाल से अच्छी तरह से वाक़िफ़ नहीं हैं और दूसरों पर तान मारने को तैयार होते हैं ॥

३०—इसी तरह, जो पुरुषों को जनेऊ देने वाले से उपदेश काफ़ी मिल जाता, तो फिर वे उसी के मुवाफ़िक़ कार्रवाई करते, और परमार्थी फ़ायदा उससे उठाते। पर सब जगह यह बात देखने में आती है कि सिवाय उन लोगों के (कि जिनका मत यह है कि दुनिया के भोग-विलास करना और जैसे-तैसे धन जमा कर के अपने मन

की दुनियावी चाहों के पूरा करने में ख़र्च करना, और जिनका ख़ुदा और परमेश्वर धन है कि उस की प्राप्ति के वास्ते जैसी-तैसी ख़िदमत और चाहें, जिसकी नौकरी होवे, बड़ी ख़ुशी और उमंग के साथ बजा लाना और और जिनका गुरु स्त्री है कि जैसे वह हुक्म करे, उसकी दिल और जान से तामील करना) और जितने ऊँची ज़ात वाले लोग हैं, वे ज़रूर दूसरा गुरु धारण करते हैं। यानी जो टेकी हैं, वे अपने घराने की चाल और रस्म के मुआफ़िक़ वंशावली गुरु धारण करते हैं। और जो सच्चे खोजी परमार्थ के हैं, चाहे ऐसी खोज उनके मन में वंशावली गुरु करने से पहले ही पैदा होवे या पीछे, वे सच्चा और भेदी गुरु तलाश करके, चाहे जिस मत और पंथ में मिले, उसको अपना गुरु धारण करके अपना जन्म सुफल करते हैं। फिर इस मुआमले में भी उन निन्दक साहबों की बे-ख़बरी और नादानी, अपनी बिरादरी और कुल्ल ऊँची क़ौमों की रस्म और चाल से, ज़ाहिर है॥

३१—अब समझना चाहिये कि गुरु नाम परमार्थ का रास्ता बताने वाले और अन्धेरे में प्रकाश कराने वाले का है। सो जब कि यह ताक़त किसी में पाई नहीं जाती, तो उसका नाम गुरु किस तरह हो सकता है? जो लोग कि टेकी हैं और सच्चे परमार्थ से बे-ख़बर, वे अपने बाप-दादों के गुरु की औलाद से जो कोई मिले, चाहे वह कुछ जानता है या नहीं, उसी को गुरु बनाते हैं। लेकिन जब उनके दिल में सच्चा खोज पैदा होता है, तब वे देखते हैं

कि जिसको उन्होंने गुरु बनाया, वह मुतलक़ गुरुवाई की चाल से और असली परमार्थ से आप बे-खबर हैं, फिर दूसरे को वह क्या बतावेगा और जीव के कल्याण के मामले में उसकी क्या मदद करेगा, तब लाचार होकर वे भेदी और अभ्यासी गुरु खोज कर उसकी शरण लेते हैं और अपने जीव का कारज उसके वसीले से बनवाते हैं। तो अब समझना चाहिये कि ऐसे नादान गुरु के छोड़ने में क्या पाप और बुराई हुई ? जो कोई अपने लड़के को पढ़ाना चाहता है और किसी उस्ताद के पास उसको भेजता है, तो जो वह उस्ताद पढ़ाने के क़ाबिल है तो ख़ैर, नहीं तो फ़ौरन उसको दूसरा उस्ताद तलाश करके उसके सुपुर्द करता है। और जो विद्यार्थी कि एक उस्ताद से पढ़ता है और जब उसको ज़्यादा इल्म की चाह होती है या बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ना चाहता है कि जो वह उस्ताद नहीं पढ़ा सकता और समझा सकता है, तो वह दूसरे उस्ताद की, जो उससे ज़्यादा इल्म रखता है, तलाश करके, उससे इल्म पढ़ना शुरू करता है। जो वह यह टेक बाँधता कि एक उस्ताद करके दूसरा नहीं करना चाहिए या जो लड़के मदरसे में एक दर्जे में पढ़ते हैं, वे उम्र भर उसी उस्ताद से पढ़ने का इरादा करें और ऊँचे दर्जे में चढ़ना न चाहें या दर्जा चढ़ने पर भी उस उस्ताद को न छोड़ें, तो ये सब कौदन और मूर्ख रहेंगे और उनको, तरक़्क़ी इल्म की, कभी हासिल न होगी। इसी तरह जो वंशावली गुरू या अपने पति को गुरु मान कर बैठ रहेंगे,

वे परमार्थ में हमेशा कौदन और मूर्ख बने रहेंगे, और उनको कुछ परमार्थी फ़ायदा हासिल न होगा। संतों ने कहा है कि:—

सुरत-शब्द बिन जो गुरु होई।
ताको छोड़ो पाप कटा॥

झूठे गुरु की टेक को, तजत न कीजे बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥
गुरू मिला है हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले, तब लगे ठिकाना ठौर॥

गुरू सोई जो शब्द सनेही।
शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा।
उन चरणन की होजा धूरा॥
और पहिचान करो मत कोई।
लच्छ अलच्छ न देखो सोई॥
शब्द भेद लेकर तुम उनसे।
शब्द कमाओ तुम तन मन से॥

३२—अब जो कोई ऐसी टेक बाँधते हैं कि एक गुरु करके दूसरा नहीं करना चाहिये, तो उनको जानना चाहिये कि उनके मन में परमार्थ की चाह बिलकुल नहीं है, नहीं तो वह परख कर गुरु धारण करते, या जो गुरु, पुरानी रस्म के मुआफ़िक़, उन दिनों में कि परमार्थ का खोज और शौक़ नहीं था, कर लिया था, तो फिर

सच्चा और पूरा गुरु खोज कर धारण करते। लेकिन संत अथवा राधास्वामी मत का उपदेश संसारी और टेकी जीवों के वास्ते नहीं है। यह सिर्फ़ उन लोगों के वास्ते है कि जिनको अपनी और दुनिया की हालत देख कर सच्ची विरह और ख़्वाहिश अपने जीव के कल्याण की, हृदय में, उपजी है। ऐसों की शान्ति, सिवाय सच्चे और पूरे गुरु के, कोई दूसरा नहीं कर सकता है और इन्हीं जीवों को पूरे गुरु की क़दर और पहिचान भी आवेगी ॥

३३—कहा है कि

गुरु कीजे जान और पानी पीजे छान

जिसने बे-जाने और बे-समझे, गुरु कर लिया, उसे अन्त में पछताना पड़ेगा ॥

३४—आज-कल के वंशावली गुरुओं का यह हाल है कि अपने चेले को वसीयत करते हैं कि बाद उनके मरने के उनकी गया करे, ताकि उनके जीव को स्वर्ग मिले। जब ऐसे गुरु मिले कि वे आप चेले की गया करने पर अपने जीव का कुछ कल्याण समझते हैं, तो अफ़सोस है ऐसी गुरुवाई के नाम पर, और हज़ार अफ़सोस है ऐसे मूर्खों की समझ पर, कि जो ऐसे नादानों को अपना गुरू बनाते हैं। ऐसे गुरु और चेले ज़रूर संतों की और उनके सेवकों की निन्दा करेंगे। और उस निन्दा के बचनों को वे जीव सुनेंगे और मानेंगे, जो कि इन नादान मूर्ख गुरु-चेलों से भी बढ़ कर मूर्ख और निपट संसारी हैं ॥

३५—चौथा, औरतों के सतसंग में शामिल होने से लिहाज़ पर्दे का न रहना। मालूम होवे कि औरत और मर्द में सूरत बराबर मौजूद है और उनकी ताक़त भी, सिवाय जिस्मानी यानी देही की क़ुव्वत के (जिसमें थोड़ी कमी-बेशी है), बराबर है ॥

३६—देखो, आज-कल लड़कियाँ मदरसे में पढ़ कर मिस्ल लड़कों के, बी. ए. और एम. ए. और डाक्टरी का दर्जा हासिल करती हैं। और इसी तरह भक्तमाल की पोथी के पढ़ने से मालूम होगा कि पिछले वक़्तों में बहुत सी स्त्रियाँ भक्त हुईं और उनको भारी दर्जा मालिक के दरबार में मिला कि अब तक लोग उनका नाम बड़े भाव और प्रेम के साथ लेते हैं ॥

३७—अब विचारना चाहिए कि यह दर्जे, विद्या या भक्ति और परमार्थ के, पर्दे में रहने से, कभी हासिल नहीं हो सकते। और जो स्त्रियाँ कि शुरू से बराबर पर्दे में रहती हैं, उनकी समझ और अक़्ल निहायत मोटी और ओछी होती है और अपने जीव के कल्याण की उनको कुछ भी ख़बर नहीं होती ॥

३८—किस क़दर अफ़सोस की बात है कि जो औरतें क़ाबिल विद्या के पढ़ने और भक्ति की कमाई करने के हैं, वे सिर्फ़ नीच से नीच कामों में, जो कि दो-चार रुपये महीने को मज़दूरनी कर सकती है, लगाई जावें, और विद्या और भक्ति के फ़ायदे से महरूम रही आवें, बल्कि ऐसी

अटकें उनके वास्ते लगाई जावें कि वे इस दौलत के बिल-कुल बे-नसीब रहें ?

३९—बहुत विद्या पढ़ने की इस क़दर ज़रूरत नहीं है। लेकिन इतना ज़रूर चाहिए कि जिससे वे अपनी माँ-बाप, भाई-बन्धु और खाविन्द और लड़के को चिट्ठी लिख-पढ़ सकें और अपने घर का हिसाब-किताब लिख लेवें और अपने मत की परमार्थी पोथियाँ पढ़ कर समझ लेवें।

४०—अब ख़्याल करो कि जो उनको इस क़दर ताक़त हासिल हो गई और रास्ता भी परमार्थी अभ्यास का बता दिया गया, तो चाहे वे घर में रहें और चाहे परदेस में अपने पति के साथ उनको अकेले रहना पड़े, उनके पास हमेशा सच्चा और निर्मल प्रेम पैदा करने और बढ़ाने वाला संगी, पोथी स्वरूप में, मौजूद रहेगा। जब, सब कारोबार घर के से फ़ुरसत हुई, उसी वक़्त पोथी को पढ़ने लगें, तो किस क़दर फ़ायदा होगा कि उनका वक़्त मालिक की याद या अपने मन और इन्द्रियों की सम्हाल के ख़्याल में बसर होगा, और निन्दा-स्तुति के पाप और फ़िज़ूल इधर उधर की बातें और इसकी-उसकी गिलह और चबाव करने से बच जावेंगा ॥

४१—स्त्रियों के जाहिल और मूर्ख रखने का सारा पाप और भार उनके पुरुषों की गर्दन पर है, क्योंकि जो पुरुष आप सच्चा परमार्थी होगा, वह अपनी स्त्री को भी ज़रूर शरीक करेगा, और जो आप थोड़ी विद्या की क़दर जानेगा कि जिनसे उसकी स्त्री उसको, और वह अपनी स्त्री को,

चिट्ठी-पत्री भेज सके और घर का हिसाब-किताब लिख सके, तो वह ज़रूर अपनी स्त्री को इस क़दर विद्या ज़ोर देकर पढ़वावेगा और उसको पोथी पढ़ने और परमार्थी अभ्यास करने की तवज्जह दिलाता रहेगा कि जिस से उस स्त्री का, और भी उस पुरुष का, इस दुनिया में और फिर परलोक में भला होवे और पाप कर्मों से बचें ॥

४२—और जो आप पूरे गुरु से नहीं मिले और कुछ परमार्थ की कार नहीं करते और अपने वक़्त और अपनी नर देही की क़दर नहीं जानते, वे आप ही अभागी रहेंगे और अपनी स्त्री भी अभागी बनावेंगे, और इस पाप का फल आगे भोगेंगे। क्योंकि जिसने नर देही पाकर, उसको पशु की तरह मेहनत-मज़दूरी और खान-पान में खर्च किया, वह मनुष्य, चाहे स्त्री होवे चाहे पुरुष, पशु के समान है ॥

४३—अब पर्दे के मामले में ख़्याल करो कि किस क़दर स्त्रियों की पर्दे-दारी लोग कर सकते हैं ? जब स्त्रियों गँगा-यमुना नहाने जाती हैं या तीर्थों के मेले और तमाशे में जाती हैं और जा-ब-जा तीर्थों के मक़ामों पर, मन्दिरों में, दर्शन करती फिरती हैं, या अपनी ज़ात और बिरादरी में तीज-त्यौहार और ज्यौनार और सियापा और मुहकान वग़ैरा में जाती हैं, या जब अपने गुरू या इष्ट-देव की सवारी के साथ बाज़ार में निकलती हैं, या शीतला और बराही और देवी-भवानी या और कोई देवता की की ख़ास २ वक़्त पर पूजा की जाती हैं, तो उस वक़्त सर-ए-

बाज़ार और गली-कूचों में तो वे, बे-तकल्लुफ़ मुंह खोले हुए और उमदा-उमदा पोशाक और ज़ेवर पहने हुए बराबर निकलती हैं। और सब की नज़र उन पर पड़ती है। और मंदिरों में और मेलों में बराबर औरतों और मर्दों की भीड़-भाड़ में धक्के खाती हैं। और दरिया में सैकड़ों मर्दों और औरतों के रू-ब-रू नहाती हैं। अब विचारो कि वहाँ किस क़दर पर्दा क़ायम रहता है और किस क़दर ग़ैर आदमियों की रोक और अटक हो सकती है? सिवाय इसके, जब रेल में सवार होकर पहरों और दिनों का सफ़र दिन और रात में करती हैं और उसी रेल गाड़ी में ग़ैर मर्द, ऊँची और नीची ज़ात वाले, और ग़ैर क़ौम वाले, भी बैठे हुए हैं, और स्टेशन पर उतर कर भीड़-भाड़ में होकर गुज़रती हैं, वहाँ किस कदर पर्दा हो सकता है? और शादी और ग़मी के वक़्त अपने घरों में किस क़दर मर्द जमा होते हैं और वहाँ औरतें और मर्द मिल कर कार्रवाई करते हैं?

४४—और अब सतसंग का हाल सुनिये कि वहाँ सिर्फ़ उम्र-रसीदा यानी बूढ़ी औरतें ख़ास कर शामिल होती हैं और उनके साथ भी कोई न कोई उनका ख़ास रिश्तेदार संग होता है। और पहिले तो नौ-जवान औरतें आम सतसंग में शामिल नहीं की जाती हैं, और फिर अलेहदा पर्दे में बिठाई जाती हैं कि जहाँ से पर्दे में वे बचन सुन सकती हैं। और जो कोई सतसंग में कभी-कभी बैठती हैं तो उनके ख़ाविन्द या माँ-बाप या भाई या लड़के उनके

संग होते हैं। एक तरफ़, जो औरतों के वास्ते मुक़र्रर है और जहाँ कोई मर्द नहीं बैठता है, उनकी बैठक रहती है। और जब सतसंग बरख़ास्त होता है, तब उसी वक़्त अपने रिश्तेदारों के साथ, बाद उठ जाने मर्दों के, अपने अपने घर चली जाती हैं। और जो कोई ठहरती हैं तो वे ज़नाने मकान में बैठती हैं। मर्दों की सफ़ में कोई औरत नहीं बैठती और न किसी की आपस में बात-चीत होती है। बल्कि मर्दों की भी आपस में बात-चीत बहुत कम होती है, क्योंकि सब के सब या तो सतसंग के बचनों के सुनने में मशग़ूल रहते हैं, और बाद सतसंग के, अपने अभ्यास में अलेहदा बैठ जाते हैं, औरतें ज़नाने मक़ान में, और मर्द मर्दाने मक़ान में। और जब सतसंग में बैठती हैं, तो चादर ओढ़ कर कि जिससे उनके सर्व अंग ढके रहते हैं। और सिवाय चन्द पुरानी और बूढ़ी औरतों के, बाक़ी औरतें, और ख़ास कर जवान औरतें, कभी-कभी रात के सतसंग में आती हैं। हर रोज़ कोई नहीं आती, और जब आती हैं तो अपने ख़ास रिश्तेदारों के संग, और उन्हीं के संग घर को, बाद सतसंग के, वापस जाती हैं। और दिन के वक़्त जवान औरतें बहुत कम सतसंग में शामिल होती हैं और जो कभी होती हैं तो वे पर्दे के मकान में, जो सतसंग घर से मिला हुआ है, बैठती हैं। कोई-कोई साहब अपनी स्त्री व रिश्तेदार औरत का दूर और पर्दे में बैठना पसन्द नहीं करते, तो उनकी स्त्री या रिश्तेदार औरत, उनकी ख़ास इजाज़त से, चादर ओढ़ कर सतसंग में बैठती हैं। मगर

ऐसी सूरत बहुत कम होती है। यानी जब परदेसी लोग आते हैं और हफ़्ता अशरा या दो हफ़्ता ठहरते हैं या कोई कभी एक या दो महीने ठहरते हैं, तो उनके संग जो औरतें ख़ास सतसंग और भजन के वास्ते आती हैं वे अलबत्ता अपने परमार्थी शौक़ और उमंग के साथ सतसंग में बैठती हैं। मगर उनकी नज़र हमेशा दर्शन पर जमी रहती है। और इसी तरह कुल मर्द और औरतें अपनी नज़र सतसंग में बचन कहने वाले पर जमाये रखते हैं। यह एक क़िस्म का ख़ास अभ्यास सतसंग में जारी है कि या तो नज़र जमा कर बैठते हैं या आँखें बन्द करके ध्यान की हालत में बैठते हैं। फिर बहुत कम ऐसा होता है कि मर्द या औरत एक दूसरे को देखे। सब अपने अपने अंतरी आनंद और फ़ायदे के वास्ते, ध्यान के क़ायदे के मुआफ़िक़, अपनी नज़र बाहर बचन सुनाने वाले पर और अंतर में ध्यान के स्वरूप पर जमा कर बैठते हैं। अब ख़्याल करो कि इस में किस क़दर बे-पर्दगी है? सिर्फ़ मालिक की दया और दर्शन की प्राप्ति के वास्ते यह सब काम किया जाता है और दुनिया और उसके ख़्यालात उस वक़्त वहाँ बहुत दूर रहते हैं। और दूसरे मक़ामों और मौक़ों पर जहाँ औरतें बाहर निकलती हैं, वहाँ कोई काम ख़ास परमार्थी नहीं करती हैं, बल्कि सैर और तमाशे देखती हैं। फिर ख़्याल करो कि उस हालत में और सतसंग की हालत में, किस क़दर भारी फ़र्क़ है? और वहाँ के और यहाँ के फ़ायदे में किस क़दर भारी तफ़ावत है?

४५—ऐसे सतसंग में, जो कोई मर्द या औरत जावेंगे,

वे अपना परलोक का फ़ायदा हासिल कर सकते हैं, और वह युक्ति उनको मालूम हो सकती है जिसकी कमाई घर बैठे करके मालिक के चरणों का रस और आनंद अपने घट में ले सकते हैं। कभी-कभी सतसंग में जाना उनका ज़रूर होगा कि जिससे वे अपने अभ्यास में मदद और तरक़्क़ी के वास्ते हिदायत हासिल करें, और जो कुछ कमाई बनी है, उसका हाल ज़ाहिर करके, जो कुछ उसमें कोई बात इसलाह-तलब होवे, उसकी दुरुस्ती करावें। यह घट में अभ्यास करने की युक्ति, जो संतों ने, और ख़ास कर इस ज़माने में, सतगुरु राधास्वामी दयाल ने अब दया करके जारी फ़रमाई, और जिसको औरत और मर्द, और लड़का और जवान और बूढ़ा आसानी के साथ, वग़ैर किसी ख़ौफ़ और ख़तरे के, करके, अपने जीव का कल्याण होता हुआ, जीते-जी अपनी आँखों से, देख सकता है। अन्य किसी मत या पंथ या समाज में, जो आज-कल जारी हैं, वह आसान युक्ति किसी को नहीं मालूम है। वह सिर्फ़ राधास्वामी मत की संगत में ही मालूम हो सकती है। जिस मर्द या औरत को, अपने जीव के कल्याण की सच्ची चाह और ज़रूरत होवे, वह उस युक्ति को, राधास्वामी संगत में दरियाफ़्त करके, उसका अभ्यास गुप्त अपने घर में बैठ-कर, कर सकता है, और अपनी नर देही, जीते-जी, घट का आनन्द और रस लेकर, सुफल कर सकता है। और जो इस बात को नहीं मानते, उनको इख़्तियार है, पर अंत में

उनको बहुत पछताना पड़ेगा, और उस वक़्त अफ़सोस करके हाथ मलने से कुछ फ़ायदा न होगा ॥

४६—अब ख़्याल करो कि ऐसे सतसंग में शामिल होने, और ऐसे सच्चे और पूरे मत की पोथियों के पढ़ने, या उसकी युक्ति का अन्तरमुख अभ्यास करने से, किसी मर्द या औरत और ख़ास कर बेवा औरत के रोकने में किस क़दर उस जीव का नुक़सान और हर्ज होगा ? और ऐसे रोकने और अटक करने वालों को किस क़दर पाप होगा ?

४७—अलबत्ता एहतियात और सम्हाल हर काम में ज़रूर है। चाहे मर्द होवे या औरत, उसको एहतियात और होशियारी और सम्हाल के साथ, अपना बर्ताव सतसंग में, और भी अपने मकान पर, करना चाहिये। और जो इस में किसी क़दर ग़फ़लत या बे-परवाही नज़र आवे और जो कोई उसको होशियार करे, और एहतियात का तरीक़ा बतावे, वह सच्चा हितकारी है और उसका बचन मानना ज़रूर और मुनासिब है, क्योंकि परमार्थियों पर भी फ़र्ज़ है कि जहाँ तक मुमकिन होवे, ऐसी चाल-ढाल इख़्तियार करें कि जिसमें दुनिया के कारोबार में भी ख़लल न पड़े और परमार्थ भी उनका बनता जावे। और इस वास्ते औसत यानी मध्य के दर्जे की चाल चलना, हर काम में, चाहे परमार्थी होवे या दुनियावी, हमेशा फ़ायदेमंद होता है। और खैंच और तान में, इस सिरे पर या उस सिरे पर, हमेशा दुख या तकलीफ़ पैदा होती है। जिस क़दर मुनासिब और ज़रूरी एहतियात और पर्दा औरतों को चाहिये,

वह उनको रखना चाहिये, और जिस क़दर मर्दों को एह-तियात ज़रूर और मुनासिब है, उसके मुआफ़िक उनको बर्ताव करना चाहिये। मगर सतसंग, और युक्ति लेकर अभ्यास करना हर एक को मुनासिब और ज़रूर है। संतों ने कहा है कि—

लाज जग काज बिगाड़ा री। मोह जग फन्दा डारा री॥

जो कामिन पर्दे रहें, और सुनें न गुरुमुख बात।
सो तो होंगी शूकरी, फिरें उघाड़े गात॥

४८—मुनासिब दर्जे की लाज और एहतियात दुनिया की ज़रूर है, ग़ैर-वाजिब और फ़िज़ूल लाज और पर्दा, कि जिस में परमार्थ का अकाज होवे, नहीं करना चाहिये। अलबत्ता गहरे प्रेमी परमार्थियों की चाल सब से निराली होगी। और इसी तरह दुनिया में जिस किसी को किसी बात का गहरा शौक़ हो गया है, उसका बर्ताओ भी और सब से न्यारा होगा। पर ऐसे लोग क्या परमार्थ और क्या दुनिया में, बहुत कम और बिरले होते हैं, और उन पर किसी का हुक्म नहीं चल सकता, और न वे किसी क़ायदे के पाबंद हो सकते हैं॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१, शब्द २० के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

अंत हुआ जग माहिं। आदि घर अपना भूली॥ १॥

अर्थ—सुरत, भोगों में फँस कर, जड़खान में उतर गई, और संतों के दसवें द्वार को, जो तीन लोक की रचना का

आदि है, और जहाँ से सुरत, पिंड में उतरी थी, भूल गई ॥

मध्य गही पुनि आय । अन्त को फिर ले तोली ॥ २ ॥

अर्थ—और फिर मध्य यानी मत्यु लोक में नर देही पाकर त्रिलोकी के अंत पद की, जो कि दसवाँ द्वार है, सुरत ने खबर ली ॥

आदि अंत मध छोड़ । गही जा अपनी मूली ॥ ३ ॥

अर्थ—और फिर, इन तीनों स्थानों यानी दसवाँ द्वार और मृत्युलोक में जड़ खान को छोड़कर अपने मूल पद यानी सत्तपुरुष राधास्वामी देश में पहुँची, या उस का निशाना और इष्ट बाँधकर उस तरफ़ को चलने लगी ॥

जीवन पदवी मिले । चढ़े जो अब के सूली ॥ ४ ॥

अर्थ—सूली मतलब उस धार से है जो सहसदल-कँवल से गुदा चक्र तक आई है । सो जो कोई इस धार को पकड़ कर ऊपर को चढ़े, वही छठे चक्र के पार जा कर, मौत को जीत लेगा और फिर सत्तलोक में पहुँच कर अमर हो जावेगा ।

ससे मारिया सिंह । कौन यह समझे बोली ॥ ५ ॥

अर्थ—और फिर वही सुरत, जो कि मुआफ़िक़ ख़र-गोश के, पिंड में ग़रीब और निबल थी, दसवे द्वार में पहुँच कर, सिंह यानी काल को मार लेगी ॥

मात पिता दोउ जने । पूत ने बैठ खटोली ॥ ६ ॥

अर्थ—जब सुरत, गर्भ में यानी षट चक्र के देश में आई, तब उसने पहिले ब्रह्मांड और पिंड की रचना करी, यानी माया और ब्रह्म के पद उसी से प्रकट हुए ।

और जब सुरत जन्मी, यानी जीव गर्भ से बाहर आया, तब वही जीव, पिंड में उतर कर बैठने से, माया और ब्रह्म का पुत्र हो गया ॥

मछली चढ़ी अकाश । धरन कर डारी पोली ॥ ७ ॥

अर्थ—और जब सुरत मछली की तरह, शब्द की धार को पकड़ कर उल्टी, यानी ऊपर को चढ़ी, तब वह धरन यानी पिंड को पोला या खाली कर गई ॥

चान्द सूर पाताल से । निकले पट खोली ॥ ८ ॥

अर्थ—जब चढ़ते चढ़ते दसवें द्वार के परे गई, तब सूरज और चाँद यानी त्रिकुटी और सुन्न स्थान दोनों, पाताल यानी नीचे नज़राई पड़े ॥

चोरन पकड़ा साह । साह ने पहरी चोली ॥ ९ ॥

अर्थ—जब सुरत यानी जीव का उतार हुआ तब काल और कर्म, और काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार वग़ैरा चोरों ने इसको घेर कर बन्द, यानी चोले में गिरफ़्तार कर लिया ॥

अमृत पी पी मरें । ज़हर की गाँठी खोली ॥१०॥

अर्थ—और जब वही जीव यानी सुरत उलट कर अपने घर की तरफ़ को चली और ब्रह्मांड के परे चढ़ गई और अमी की धारा बहाने लगी, तब वही सब चोर, अमृत पी कर, मर गये, और उनकी ज़हर की गाँठ खुल कर भस्म हो गई ॥

रा धा स्वा मी गाइया । यह भेद अमोली ॥११॥

अर्थ--राधास्वामी ने यह अमोल पद का अमोल भेद गाया ॥

संत बिन को बूझि है। यह मर्म अतोली ॥ १२ ॥

अर्थ--और इसको बिना संत के, कोई नहीं समझ सकता है ॥

अजा मारिया भेड़िया। ले मिर्गन टोली ॥ १३ ॥

अर्थ--अजा बकरी को कहते हैं, सो यह सूरत, सुरत की, पिंड में थी, यानी काल भेड़िये का खाजा हो रही थी। सो जब सतगुरु की कृपा से उलट कर ब्रह्मांड और उस के परे पहुँची, तो मन और इन्द्रियों को संग लेकर, काल-भेड़िये पर चढ़ आई और उसको मार दिया ॥

सुरत शब्द मेला भया। ले अनरस घोली ॥ १४ ॥

अर्थ--और तब, सुरत का, शब्द के साथ मेला हो गया, यानी अमृत का भंडार खोल दिया ॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१, शब्द २१ के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

गुरु उलटी बात बताई। मूरखता खूब सिखाई ॥ १ ॥

अर्थ--गुरु ने यह उलटी बात बताई कि संसार में मूर्ख हो करके बर्त, यानी चतुराई छोड़ दे, तो तेरा कोई दामन नहीं पकड़ सकेगा ॥

और दूसरे यह कि मूर यानी मूल पद की रक्षा और सम्हाल रख, यानी इस तरफ़ से उलट कर, राधास्वामी के चरणों को दृढ़ करके पकड़ ॥

सोते ने जमा कमाई। जगते ने माल गँवाई ॥ २ ॥

अर्थ—जिस किसी ने संसार की तरफ़ से उदास होकर, इसके कारोबार में दख़ल देना छोड़ दिया, यानी इस तरफ़ से सो गया, और परमार्थ में लग गया, उसी ने जमा हासिल की, यानी परमार्थ की कमाई करके प्रेम की दौलत पाई। और जो संसार की तरफ़ मुतवज्जह रहा, और बहुत होशियारी और शौक़ से उसके कारोवार करता रहा, उसी ने परमार्थ की दौलत खोई और अपनी चैतन्यता मुफ़्त गँवा दी ॥

बैठे ने रस्ता काटा। चलते ने बाट न पाई ॥ ३ ॥

अर्थ—जो मन कि निश्चल हो करके घट में बैठा, वही ऊँचे की तरफ़ चढ़ने लगा, और परमार्थ का रास्ता तै करता हुआ, घर की तरफ़ चला। और जो मन कि चंचल रहा, और इधर-उधर संसार में दौड़ता रहा, उसको घर का रास्ता नहीं मिला, और न वह उस तरफ़ को चला ॥

धरती चढ़ गगना आई। सुन्नी पाताल समाई ॥ ४ ॥

अर्थ—जो सुरत कि अभ्यास करके ब्रह्मांड में और उसके परे पहुँची, उसके सँग धरती, यानी माया भी, जिसका आदि निकास बिकुटी से हुआ है, उलट कर, अपने असल में जा मिली। और जो सुरत कि संसार में लिपट रही, वह माया के साथ, नीचे से नीचे के मक़ाम तक, उतरती चली गई ॥

चोरी से खाविन्द रीझा। सच्चे की मार खपाई ॥ ५ ॥

अर्थ—जो शख़्स कि अपने परमार्थ की कमाई और

तरक्क़ी को जगत से छिपाये हुए चला, उससे मालिक प्रसन्न हुआ। और जिस किसी ने कि सचौटी के साथ अपने परमार्थ का भेद और कमाई का हाल जगत के जीवों से खोल कर कहा, उसी को अनेक तरह के विघ्नों से मुक़ाबिला करना पड़ा, और सख़्त तक़लीफ़ उठानी पड़ी, और उसी के परमार्थ में घाटा हुआ ॥

अग्नी को जाड़ा लगा। वर्षा से सूखी साखा ॥ ६ ॥

अर्थ—जब सुरत, गगन की तरफ़ को चढ़ने लगी, तब अग्नि यानी माया (जो सुरत की मदद से चैतन्य थी) कांपने लगी, यानी उसकी चैतन्यता खिंच गई। और जब अमृत की वर्षा, अंतर में चढ़ने वाली सुरत पर, होने लगी, तब ब-सबब खिंचाव और सिमटाव सुरत के, जो उसकी धारें नीचे की तरफ़ जारी थीं, वे सूखने लगीं और सिमटती चलीं ॥

रोटी नित भूखी तरसे। पानी अब प्यासा तड़पे ॥ ७ ॥

अर्थ—और तब रोटी यानी माया और उसके पदार्थ जो कि सुरत की धार से चैतन्य थे, अब उस चैतन्यता के के लिए भूखे तड़पते हैं। और इसी तरह पानी यानी मन, सुरत की चैतन्य धार के वास्ते, प्यासा तड़पने लगा ॥

सोते पर खाट बिछाई। जगते को सुषुपति आई ॥ ८ ॥

अर्थ—जो परमार्थ की तरफ़ से ग़ाफ़िल यानी सोता रहा, वह माया के तले यानी षट चक्कर में दबा और फँसा रहा। और जो परमार्थ की कमाई, चेत कर और होशि-

यारी के साथ, करने लगा, वह पिंड और संसार की तरफ़ से बे-ख़बर होता गया ॥

बंझा नित जन्ती हारी । जन्ती पुन बांझ कहाई ॥ ९ ॥

अर्थ—बंझा यानी माया से (जबकि सुरत उसके घेर में उतर कर आई), अनेक प्रकार की रचना और अनेक पदार्थ पैदा हुए । और जब सुरत यानी जन्ती और असल कर्ता उलट कर पिंड और ब्रह्मांड के परे पहुँची, तब सब रचना सिमट गई, और वह अकेली अपने घर की तरफ़ सिधारी ॥

घोड़े पर पृथ्वी दौड़ी । ऊँटन चढ़ गगना फोड़ी ॥ १० ॥

अर्थ—जब कि सुरत, जो पिंड में फँस कर देह यानी पृथ्वी रूप हो रही थी, उलट कर ब्रह्मांड की तरफ़ चली, तो वह मन रूपी घोड़े पर सवार होकर दौड़ी, और तब ही ऊँट यानी स्वांसा अथवा प्राण को उलट कर और गगन को फोड़ कर चढ़ गई ॥

राधास्वामी मौज दिखाई । सूरत अब शब्द लगाई ॥११॥

अर्थ—खुलासा इस शब्द का यह है कि राधास्वामी ने अपनी मेहर और मौज से, सुरत को चढ़ी कर, शब्द से मिला दिया ॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१, शब्द २२ के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

सुनरी सखी इक मर्म जनाऊँ । नई बात अब तोहि सुनाऊँ ॥ १ ॥

अर्थ—हे सखी, तुझको एक भेद जनाता हूँ और नई बात सुनाता हूँ ॥

दिन बिच नाचत चन्द दिखाऊँ। रैन उदय दिनकर दरशाऊँ ॥ २ ॥

अर्थ—सुन्न में जहाँ कि सदा रोशनी रहती है यानी दिन रहता है, चन्द्रमा स्वरूप नज़र आता है, और त्रिकुटी के मक़ाम पर जहाँ से कि माया यानी अन्धेरा और रात शुरू हुई, सूरज रूप रोशनी देता है ॥

अग्नि पूतरी जल से सिंचाऊँ। जल की रम्भा अग्नि नचाऊँ ॥ ३ ॥

अर्थ—सहसदलकँवल में जोति स्वरूप अमृत की जल-धार से (जो ऊंचे से आती है) रोशन है, और अमृत धार के संग जो धुन सहसदलकंवल से नीचे उतरी, वह अग्नि यानी माया के घेर में केल कर रही है ॥

गगन माहिं पृथ्वी चलवाऊँ। पृथ्वी मध्य गगन लखवाऊँ ॥ ४ ॥

अर्थ—आकाश में पृथ्वी यानी देह की वासी सुरत को चढ़ाऊँ, और पृथ्वी यानी देही में गगन यानी आकाश का लखाओ करूं ॥

व्यौम चलाय पवन थमवाऊँ। सिंह मार और स्यार जिताऊँ ॥ ५ ॥

अर्थ—व्यौम यानी मन-आकाश जब सुरत की चढ़ाई के वक़्त ऊपर को सिमटे, तब प्राण यानी पवन धीमी होकर ठहर जाती है। स्यार जो जीव से मुराद है, वह गगन में चढ़ कर, सिंह यानी काल को जीत लेता है ॥

दुर्बल से बलवान गिराऊँ। त्रिकुटी चढ़ यह धूम मचाऊँ ॥ ६ ॥

अर्थ—दुर्बल उसी जीव या सुरत से मतलब है, जो पिंड में उतर कर निहायत बे-ताक़त हो जाती है, और

त्रिकुटी में चढ़. कर काल बली को पछाड़ कर ज़ेर कर लेती है ॥

कागन झुन्ड हंस करवाऊँ । लूकन को अब सूर दिखाऊँ ॥ ७ ॥

अर्थ—अनेक जीवों को, जो पिंड में, निपट काग यानी मन रूप होकर बर्त रहे हैं, दसवें द्वार में पहुंचा कर, हंस स्वरूप बनाऊं । और निपट संसारी, जो उल्लू के मुआफ़िक़ मालिक की तरफ़ से अन्धे और अजान हो रहे हैं, त्रिकुटी मेंपहुंचा कर सूरज-ब्रह्म का दर्शन कराऊं ॥

उलटी बात सभी कह गाऊँ । ऐसे समरथ राधास्वामी पाऊँ ॥ ८ ॥

अर्थ—यह सब उलटी बातें समर्थ सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया से सही करके दिखाई जा सकती हैं ॥

बचन इक्यावनवाँ

राधास्वामी मत का अभ्यास और उसका फल

१—जो कोई सच्चे शौक़ के साथ, राधास्वामी मत में इस मतलब से शामिल हुआ कि अपने जीव का सच्चा कल्याण यानी उद्धार करावे, और देह के दुख-सुख और जन्म-मरण के दुख से बच कर, परम और अमर आनन्द को प्राप्त होवे, उसको चाहिए कि शब्द-भेदी और शब्द-अभ्यासी गुरु ढूंढ़ कर, सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और उनके सतसंग की सच्ची शरण लेवे, और शब्द मार्ग की तरकीब दरियाफ़्त कर के, नियम के साथ, हर रोज़, दो बार या तीन बार या चार बार अभ्यास करे, तो उसको ज़रूर थोड़ा-बहुत रस मिलता रहेगा, और उसके मन और

सुरत, दिन-दिन पिंड देश से, आहिस्ता-आहिस्ता अलेहदा होकर आकाश में और उसके परे घट में चढ़ेंगे। और एक दिन पिंड और ब्रह्मांड यानी माया की हद के पार पहुँच कर, सुरत, निर्माया देश यानी संतों के धाम में प्राप्त होकर अमर और अजर आनन्द पावेगी, और तब जन्म-मरण और देह के दुख-सुख से सच्ची रिहाई हो जावेगी।

२—सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यासी को घबराहट के साथ जल्दी करनी या निराश होकर अभ्यास छोड़ देना, किसी सूरत में मुनासिब नहीं है॥

३—देखो, दुनिया में जिसको जिस काम का सच्चा शौक़ होता है वह उसको थोड़ा या बहुत दुरुस्ती के साथ अंजाम देता है, और कोई विघ्न या ज़ाहिरी तक़लीफ़, उसको, उस काम के करने से रोक नहीं सकती। बल्कि जो मेहनत और तवज्जह वह उस काम के करने में करता है, उस मेहनत में उसको रस आता है और वह ना-गवार नहीं मालूम होती। और चाहे जिस क़दर उस काम के पूरे होने में देर लगे, वह जल्दी के सबब से निराश होकर उसको नहीं छोड़ता है। इसी तरह परमार्थ के अभ्यासियों को मज़बूती के साथ अपना अभ्यास जारी रखना चाहिये, और जो प्रतीत के साथ, कि एक दिन दया ज़रूर होगी, इस काम को प्रीति के संग करे जावेगा, तो वह कभी ख़ाली नहीं रहेगा, और राधास्वामी दयाल उसको जब-तब, जैसा-जैसा मुनासिब समझेंगे, दया करके, अंतर में रस और आनंद बख़्शते जावेंगे॥

४—जो लड़का कि मदरसे में पढ़ने को भेजा जाता है उसको फ़ौरन पढ़ने का रस नहीं आता है। पर जो वह, खौफ़ और दबाओ के साथ पढ़ना, कुछ अर्से तक हर रोज़ जारी रखता है, तो रफ़्ता-रफ़्ता उसको मज़ा आता जाता है, और फिर इस क़दर शौक़ बढ़ जाता है कि जो कोई उसको रोके तो वह अपने काम को नहीं छोड़ता है, बल्कि दिन दिन उसको बढ़ाता जाता है। इसी तरह परमार्थ में भी, पहिले, खौफ़, चौरासी और नर्कों के दुख और जन्म-मरण और देह की तकलीफ़ों का, और शौक़, अपने जीव के कल्याण और मालिक से मिलने का, चाहिए। जो यह शौक़ और खौफ़ सच्चा होगा (चाहे शुरू में थोड़ा होवे) तो जरूर परमार्थी कार्रवाई यानी अभ्यास हर रोज़ बनता जावेगा, और उसमें थोड़ा-बहुत रस भी आवेगा। और जिस क़दर दुरुस्ती से अभ्यास बनेगा यानी दुनिया के ख़यालात छोड़ कर, मन और सुरत, वक़्त ध्यान के, स्वरूप में, और वक़्त भजन के, शब्द में लगेंगे, उसी क़दर दिन-दिन रस बढ़ता जावेगा और अभ्यास करने की आदत मज़बूत होती जावेगी॥

५—जैसे वर्ष-छः महीने के बालक को किसी खाने-पीने की चीज़ का स्वाद ख़ास कर मालूम नहीं होता है, पर हर रोज़ या अक्सर ख़ास-ख़ास चीजों के खाने-पीने से उसको अनेक स्वाद की ख़बर पड़ती जाती है, और फिर स्वभाव और आदत के मुआफ़िक़ उन्हीं चीज़ों का खाना उसको पसन्द आता है, इसी तरह, शुरू अभ्यास में, सब जीव, बालकों के मुआफ़िक़, अभ्यास के रस और आनन्द

की तमीज़ कम कर सकते हैं। और यहाँ उसका सबब यह है कि पुरानी आदत के मुआफ़िक़ दुनिया के ख़यालात उनको घेरे रहते हैं। पर, जब कोई दिन इसी तरह अभ्यास जारी रक्खेंगे और दुनिया के ख़यालों को हटाते रहेंगे, तो कुछ-कुछ रस आने लगेगा, और फिर आदत के मुआफ़िक़ उन को, वग़ैर हर रोज़ अभ्यास करने के, कल नहीं पड़ेगी। तो इस क़दर अर्से तक कि आदत मज़बूत और क़ायम हो जावे, हर एक परमार्थी को, चाहे तेज़ या सुस्त शौक़ वाला होवे, अपना अभ्यास जारी रखना ज़रूर और मुनासिब है ॥

६—मालूम होवे कि जैसे कुल रचना और हर चीज़ में तीन दर्जे हैं—उत्तम, मध्यम, और निष्कृट, यानी आला औसत, और अदना, ऐसे ही आदमियों में भी तीन दर्जे या क़िस्में हैं। जो उत्तम लोग हैं, वे, बचन जल्द समझते और पकड़ते हैं और सन्देह और भ्रम भी उनके जल्द दूर हो जाते हैं, और जब वे करनी यानी अभ्यास में लगते हैं, तब उनको अन्तर में उसका फ़ायदा भी जल्द नज़र आता है, क्योंकि वे जो काम करते हैं, उसमें सर्व-अंग करके लगते हैं ॥

७—और जो मध्यम जीव हैं, उनको यह सब बातें थोड़े अर्से में हासिल होंगी ॥

८—और जो निष्कृट जीव हैं, उनकी समझ भी बहुत मंद और सुस्त होगी और संशय-भ्रम भी उनके मन में अक्सर पैदा होते रहेंगे, और वक़्त अभ्यास के, दुनिया के

ख़याल भी उनको बहुत सतावेंगे । इस सबब से, शुरू में, भजन और ध्यान का रस भी उनको कभी २ और बहुत कम आवेगा । पर, जो वे नियम से हर रोज़ अभ्यास करे जावेंगे तो थोड़े अर्से में आदत पड़ जावेगी, और जो विघ्न या मुश्किलें, मन के लगने और रस के मिलने में, पेश आवेंगी, वे भी हलकी और दूर होती जावेंगी ॥

६—मालूम होवे कि बिना सुरत और मन के अन्तर में लगने और ठहरने के, रस और आनन्द नहीं आ सकता है । इस वास्ते परमार्थी अभ्यासी को मुनासिब है कि इस बात का ख़याल और होशियारी ज़्यादा रक्खे कि मन, दुनिया के गुनावन और ख़यालों में, वक़्त अभ्यास के, न पड़ जावे, नहीं तो अभ्यास का रस नहीं आवेगा ॥

१०—ग़ौर करने की बात है कि जब कोई शख़्स खाना खाता है और कई तरह की चीज़ें खाने में मौजूद हैं, तो उस वक़्त, जो उसका मन किसी और फ़िक्र और ख़्याल में लग जावे, तो किसी चीज़ का स्वाद उसको मालूम नहीं होता है यानी हर एक चीज़ को खाया भी और फिर ख़बर न पड़ी कि क्या चीज़ खाई और उसका कैसा स्वाद था ॥

११—फिर संतों का परमार्थी अभ्यास, जो कि निहायत नाज़ुक है, बग़ैर मन और सुरत के लगाये, कैसे रसीला लग सकता है ? जैसे कि खाते वक़्त हर एक चीज़ ज़बान से मिली, पर तवज्जह दूसरी तरफ़ होने से, स्वाद नहीं मालूम हुआ, इसी तरह से अभ्यासी के मन और सुरत भी मक़ाम के स्वरूप तक पहुँचे या शब्द की धार

से भी थोड़े-बहुत मिले, पर तवज्जह दूसरी तरफ़ यानी दुनिया के ख़्यालों में लगी होने से, भजन और ध्यान का रस बिलकुल नहीं मालूम हो सकता है। इस वास्ते, यह बात ज़रूर है कि तवज्जह की सम्हाल, अभ्यास के वक़्त रक्खी जावे यानी स्वरूप और शब्द में ध्यान लगा रहे तो रस आवेगा, नहीं तो ख़ाली उठना पड़ेगा और मन दुखी होवेगा ॥

१२—बाज़े लोग जल्दबाज़ी करते हैं कि हमको जल्द अभ्यास का रस आवे और नहीं तो निराश होकर मत पर या अभ्यास के फ़ायदे पर या गुरु पर तान मारते हैं, और अपनी हालत और लियाक़त के दर्जे की परख नहीं करते हैं और न अपनी कसर दूर करते हैं। फिर कैसे रस आवे ? वे लोग यह चाहा करते हैं कि राधास्वामी दयाल अपनी दया से उनका कारज बनावें, यानी उनके मन और इन्द्रियों को मोड़ कर परमार्थ में लगावें, और अभ्यास के वक़्त उनके अंतर में तरंगें न उठने देवें, और अपनी मेहर और दया से आप उनको अंतर में रस देवें। लेकिन जो युक्ति कि उनको, वास्ते हटाने और विघ्नों के, और लगाने मन के, बताई जाती है, उसमें तवज्जह कम करते हैं। और उनका अमल-दरामद भी दुरुस्ती से नहीं करते। फिर ऐसे लोगों की दुआ कैसे जल्द मंजूर हो सकती है ? पर, जो वे अभ्यास नियम से करे जावेंगे, और कुछ मन और इन्द्रियों की भी सम्हाल रक्खेंगे, और जो नई युक्ति उनको समझाई जावे, थोड़ी-बहुत उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करेंगे,

तो थोड़े अर्से में ज़रूर उनको भजन का रस मिलने लगेगा ॥

१३—ज़ाहिर है कि कुल कार्रवाई अन्तर और बाहर की, सुरत और मन की धार के वसीले से होती है, और जिस तरफ़ कि आदमी सच्ची तवज्जह करे, उसी तरफ़ को धार उठ कर रवाँ होती है, और जैसी कार्रवाई होवे, करती है। फिर जो कोई परमार्थी, अभ्यास के वक़्त, तवज्जह अपनी अंतर में ऊपर की तरफ़, जैसे कि संतों ने फ़रमाया है, स्वरूप में या शब्द में या किसी मक़ाम पर, जमावेगा, तो ज़रूर उस तरफ़ मन और सुरत और दृष्टि की धार उठ कर रवाँ होगी। और जब तक कि दूसरा ख़्याल पैदा न होगा यानी दूसरी धार नहीं जारी होगी, तब तक, उस धार का मुख, ऊँचे की तरफ़, अंतर में रहेगा और इस खिंचाओ और तनाओ का ज़रूर थोड़ा-बहुत रस आवेगा, क्योंकि ऊँचा देश, ब-निस्बत उस मक़ाम के, जहाँ कि जाग्रत में सुरत की बैठक है, ज़्यादा रसीला और आनन्द का स्थान है, जैसे कि इस कड़ी में कहा है:—

उलट घट झाँको गुरु प्यारी। नैन दोऊ तानो हो न्यारी ॥

१४—आदमी की तवज्जह के साथ ही कि वह जिस तरफ़ को होवे, सुरत और मन और नज़र की धार, उसी तरफ़ को रवाँ होती है ॥

१५—इस वास्ते, राधास्वामी मत के किसी परमार्थी अभ्यासी को, किसी हालत में भी, निराश नहीं होना चाहिये

बल्कि होशियारी के साथ अभ्यास में, मन और इन्द्रियां को, थोड़ा-बहुत रोक कर रखना चाहिये। और जो कोई कसर होवे, उसके दूर करने का यत्न दरियाफ़्त करके, उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करना चाहिये। थोड़े से अर्से में हालत बदलनी शुरू होगी। और जब मन और इन्द्रियाँ थोड़े-बहुत रस के आदी हो जावेंगे, तब वे आप ही अभ्यास के मुक़र्रर किये हुए वक़्त पर, उस तरफ़ को तवज्जह के साथ लगेंगे और सब विघ्न आहिस्ता-आहिस्ता दूर होते जावेंगे और आनन्द और रस मिलता जावेगा।

बचन बावनवाँ

राधास्वामी मत के अभ्यासियों को, दुनियादारों, और दूसरे मतों के लोगों से, और ख़ास कर वाचक ज्ञानियों और सूफ़ियों से, किस तरह बर्ताओ करना चाहिये

१—दुनियादारों के साथ बर्ताओ—राधास्वामी मत के अभ्यासियों को दुनियादारों और बिरादरी के लोगों से ज़रूरत के मुवाफ़िक़ वर्तना चाहिए, यानी गहरी प्रीति के साथ इनसे जल्द २ मिलना और बहुत देर इनके साथ बैठना नहीं चाहिये। सिर्फ़ इस क़दर कि जितनी ज़रूरत है, इनसे मिलना और बातचीत करना मुनासिब है। और ज़्यादा बर्ताओ इनसे नहीं चाहिये, नहीं तो इनके स्वभाव और आदत और संसारी चाहें, परमार्थी के मन में असर

करेंगी, और उसके अभ्यास में ख़लल और हर्ज डालेंगी, और उसके प्रेम और भक्ति के क़ायदे और रीति के वर्ताओ में भी कसर पड़ेगी।

२—बाहरमखी पूजा वालों के साथ बर्ताओ—जो पिछले संतों के मत या और किसी मत के लोग बाहरमुखी मूर्त या किसी निशान या ग्रन्थ या पोथी या किताब की पूजा करते हैं, और सिवाय पोथी या ग्रन्थ या किताब के पढ़ने और सुनने के, दूसरा काम नहीं करते, और ग्रन्थ या पोथी या किताब के अंतरी अर्थ और घट के भेद से बिल्कुल वाक़िफ़ नहीं हैं और न उनकी तलाश और तह-क़ीक़ात करते हैं, बल्कि जो कोई उनको भेद की बात सुनावे तो मन और चित्त से सुनना भी नहीं चाहते हैं—ऐसे लोग सब टेकी है। उनसे भी राधास्वामी मत वालों को बचना चाहिये, यानी उनके साथ मेल और दोस्ती मुनासिब नहीं हैं, क्योंकि ये लोग भी संसारी हैं और मालिक का खोज और प्यार इनके मन में बिलकुल नहीं है। और जो कोई उनसे मेल-मिलाप रक्खेगा, उसको भी संसार की तरफ़ झुकावेंगे और सच्चे परमार्थ की तरफ़ से, अपने मुवाफ़िक़, बे-परवाह कर देंगे, और तरह २ के शक, सच्चे परमार्थी के मन में, डालने को तैयार होवंगे, और कहेंगे कि संसार में रहकर जिस किसी ने मन और इन्द्रियां के भोगों को नहीं भोगा या भोगना नहीं चाहता है, वह नादान और अभागी है, या यह कि परमार्थ के ख़्याली सुखों के वास्ते, दुनिया के मौजूदा मज़ों और रसों

को छोड़ देना, बिल्कुल बे-समझी की बात है ॥

३—कर्मकांडी और हठयोग के करनेवालों के साथ बर्ताओ, जो कि अनेक तरह के देही के दुख और कष्ट भोगते हैं—कर्मकांडी लोग अनेक तरह के सुखों की आशा, इस लोक की या स्वर्ग या बैकुण्ठ लोक की, बाँध कर, बाहर-मुखी कर्म और करतूत करते हैं, और हठयोगी जो कोई-कोई अंग की सफ़ाई के वास्ते या बीमारी दूर करने को या कोई सिद्धि हासिल करने के लिए काष्टा और तकलीफ़ उठाते हैं, इन सब से भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों को दूर रहना चाहिए। और किसी हालत में भी इन से परमार्थी मेल और मिलाप रखना मुनासिब नहीं। बल्कि जो संसारी भाव से, इन से रिश्तेदारी या पिछली मुहब्बत या संग होवे, तो उस को आहिस्ता २ कम करना और सिर्फ़ ज़रूरत के मुआफ़िक़ मिलना और बातचीत, व्यवहार की, करना चाहिए। परमार्थी बात इन लोगों से करना ज़रूर नहीं, क्योंकि इनके मन में सच्चे मालिक का भाव और प्यार नहीं है और न उसकी खोज और तलाश है। यह तो संसार के या स्वर्ग और बैकुण्ठ के भोग-विलास के चाहने वाले हैं या दुनिया में तमाशा और खेल दिखा कर, धन और मान-बड़ाई के पैदा करने वाले हैं। सच्चे परमार्थ की चाह इनके मन में बिल्कुल नहीं है और न पैदा हो सकती है। इस वास्ते जो बचन, विलास या मेहनत इनके समझाने के वास्ते की जावेगी, वह मुफ़्त बरबाद जावेगी और फिर क़ायल होकर ये योग अपनी नादानी से संत मत की निन्दा और हँसी करेंगे ॥

४—अन्तरी सुमिरन और ध्यानवालों के साथ बर्ताओ—ये लोग अन्तर में नाफ़ या हृदय के स्थान पर सुमिरन और ध्यान करते हैं, या नाम की ज़र्ब लगाते हैं, या नाम की धुन नीचे से उठा कर दोनों आँखों या दोनों भवों के मध्य तक पहुँचाते हैं, या दाँये-बाँये सुर से पूरक-रेचक करके गायत्री मंत्र या दूसरे नामों का, कुम्भक के साथ, सुमिरन करते हैं। मगर इस अभ्यास में ठहराओ दो, तीन या चार मिनट से ज़्यादा नहीं होता। और जो कि ध्यान करते हैं, उसमें भी स्वरूप या स्थान का भेद सही-सही नहीं जानते। इस वास्ते, इन सबका अभ्यास इन्हीं स्थानों में, पिंड के अन्दर, ख़त्म हो जाता है॥

५—ये सब लोग अपने तईं अन्तरमुख अभ्यासी समझते हैं। और इस क़दर सही है कि इनके अभ्यास से सफ़ाई और कुछ रस अन्तरी हासिल होता है, पर संत-मत में ये भी बाहरमुखी शुमार किये जाते हैं, क्योंकि इनका अभ्यास नीचे के घट यानी छः चक्रों की हद में है। इन लोगों से भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों को परमार्थी मेल-मिलाप रखना ज़रूर नहीं है॥

३—मुद्राओं का साधन करने वालों से बर्ताओ—इन लोगों में से दृष्टि और शब्द का साधन करने वाले बेहतर हैं, पर उनका भी अभ्यास सहसदलकँवल के नीचे ख़त्म हो जाता है और आइन्दा का भेद और पता उनको मालूम नहीं है, और इन्होंने शब्द और स्वरूप का अभ्यास, सिर्फ़ मन के एकाग्र करने और ठहराने के वास्ते जारी रक्खा है,

चढ़ाई बिल्कुल नहीं है, और न शब्द और न शब्द का भेद बयान करते हैं, और न उसकी खोज और तलाश है। इस वास्ते, इन लोगों के साथ भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों का मेल नहीं हो सकता। ये सब लोग थोड़ा २ आनन्द पाकर और कुछ प्रकाश देख कर तृप्त हो गये, और ब-सबब न मिलने पूरे गुरु के, इतने ही में इस क़दर अहंकार इनको हो जाता है कि इससे ज़्यादा का भेद सुनना, समझना और उसके मुआफ़िक़ करनी करना नहीं चाहते। और जो ऊंचे का भेद, मुआफ़िक़ संत मत, उनको सुनाया जावे, तो हंसी करने को तैयार हो जाते हैं॥

७—अष्टांग योग के अभ्यासी—अष्टांग योग या प्राणायाम करने वाले, इस वक़्त में बहुत कम होंगे, बल्कि ऐसा मालूम होता है कि इस योग का पूरा अभ्यासी इस वक़्त में बिल्कुल नायाब है। जिस किसी ने यह अभ्यास शुरू भी किया, तो कोई न कोई विघ्न या ख़तरे के सबब से उसका अभ्यास बन्द हो गया, या सख़्त बीमार पड़ गया। जो कोई पूरा योगी मिले, तो वह संत मत की महिमा जल्द समझ कर उसके अभ्यास में शामिल हो जावेगा। पर जो शुरू करने वाले इस अभ्यास के मिलते हैं और उन्होंने प्राणायाम के वसीले से कोई चक्र भी नहीं बेधे, वे निहायत दर्जे के अहंकारी हो जाते हैं, और इस सबब से राधास्वामी मत के अभ्यासियों से उनका मेल किसी तरह नहीं हो सकता॥

८—वाम-मार्गी और भैरवी चक्र वाले— इस फ़िरक़े में अभ्यासी बहुत कमयाब हैं। खान-पान में सब के सब भूल रहे हैं। और जो जो ज़ाहिरी रस्में इन्होंने जारी करी हैं, वे भी इस समय में निहायत नाक़िस फल देने वाली हैं, क्योंकि महात्मा और समर्थ अभ्यासी की गत और है, और जीवों की गत और। जो जीव महात्मा पुरुषों की चाल की, बगैर उनका अभ्यास किये, यानी वग़ैर मन और इन्द्रियों को बस किये, नक़ल करेंगे, वे धोखा खावेंगे, और माया के घेर में पड़े रहेंगे। पस यही हाल इस मत के लोगों का सुना जाता है। संत मत के अभ्यासियों को इनसे हमेशा दूर रहना, और इनके संग से क़तई परहेज़ करना चाहिए। और इनसे किसी किस्म की चर्चा या परमार्थी बचन-बिलास करना नहीं चाहिये, क्योंकि ये संतों के बचन को हरगिज़ नहीं मानेंगे। इनकी कार्रवाई बहुत नीचे के दर्जे की है और सच्चे परमार्थ, यानी जीव के उद्धार का फ़िक्र इस फ़िरक़े में बहुत कम, बल्कि बिल्कुल मालूम नहीं होता है॥

९—वाचक ज्ञानी और सूफ़ी—इन लोगों से भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों को मेल रखना मुनासिब नहीं है, क्योंकि इन साहबों ने सच्चे और पूरे ज्ञानियों के बचन पढकर, और अपनी एकता ब्रह्म के साथ, बुद्धि से मान कर, अभ्यास छोड़ दिया। और जो कोई इनको मिलता है, उसको यकताई के बचन सुना कर और समझा कर

ब्रह्म बना देते हैं और चौरासी और नर्कों के डर से आज़ाद कर देते हैं ॥

१०—जो कोई संत-मत के मुआफ़िक़, इनसे अभ्यास की निस्बत चर्चा करे और दरियाफ़्त करे कि तुमको ब्रह्म पद की प्राप्ति किस तरह हुई, जो जवाब देते हैं कि जाना-आना कहाँ है, ब्रह्म सब जगह व्यापक है, और देह और जिस क़दर नाम रूप की रचना नज़र आती है, सब मिथ्या और भ्रम है, सिर्फ इसी क़दर काम करना है कि ज्ञान के बचन को अच्छी तरह से समझ कर, अपने तईं ब्रह्म मानना, और इसी निश्चय को पकाना और मज़बूत करना, और मन और इन्द्रिय और देही और सब पदार्थों जो जड़ समझना।

११—इन सब से ब्रह्म न्यारा है और निर्लेप है और पाप और पुण्य उसको नहीं लगते या छू सकते हैं, और जब ऐसा निश्चय पुख़्ता हो गया, तब विदेह मुक्ति का अधिकारी हो गया। यानी जब देह छूटेगी, तब अपने निश्चय के मुआफ़िक़ जीव चैतन्य, देही बग़ैरा के बन्धन से छूट कर, व्यापक चैतन्य से मिल जावेगा ॥

१२—अब समझना चाहिए कि जो चैतन्य इस मलीन माया के देश में व्यापक है, वह सदा देहियों के बन्धन में गिरफ़्तार रहता है, और जब तक कि देहियों के खोल यानी आवरण अभ्यास करके दूर न किये जावेंगे, तब तक आज़ाद यानी विदेह नहीं हो सकता है ॥

१३—वेदांत शास्त्र में दो दर्जे माया के लिखे हैं—एक शुद्ध सत्य प्रधान, दूसरा मलीन सत्य प्रधान। और शुद्ध ब्रह्म अथवा पार-ब्रह्म पद इन दोनों दर्जों के परे कहा है। और वास्ते जुदा होने माया के देश से, योग-अभ्यास की हिदायत की है कि अपने प्राणों को छः चक्रों के पार चढ़ा कर, ब्रह्म का दर्शन करे, और फिर वहाँ से पार-ब्रह्म पद में पहुँचे, तब सच्ची मुक्ति हासिल होगी और तब ही शुद्ध-ब्रह्म के साथ एकता होगी। उस वक़्त जो बचन कि ये वाचक ज्ञानी, पोथियों को पढ़ पढ़ के, कहते हैं, सच्चे दरसेंगे, यानी सच्चा योगी अपने आपको वहाँ ब्रह्म स्वरूप देखेगा और वही ब्रह्म तमाम नीचे के देश यानी रचना में व्यापक नज़र आवेगा। और जब तक कि कोई अभ्यास करके ब्रह्म और पार-ब्रह्म पद तक न पहुँचे, तब तक एकताई के बचन कहना सिर्फ़ ज़बानी जमा-ख़र्च है। असल में उनकी हालत नहीं बदलती, यानी अज्ञानियों के मुआफ़िक़, ये वाचक ज्ञानी भी अविद्या के घेर में रह कर मन और इन्द्रियों के कहे में चल रहे हैं, और ब्रह्म या आत्मा का आनन्द एक ज़र्रा भी इनको प्राप्त नहीं होता, और न ये अपने रूप को देख सकते हैं और न ब्रह्म का दर्शन पाते हैं॥

१४—सिवाय इसके, वेदान्त शास्त्र में यह भी लिखा है कि तीन शरीर हैं, यानी स्थूल, सूक्ष्म और कारण, और इन्हीं तीनों शरीरों के अन्तरगत पाँच कोश हैं। और जीव, चैतन्य की बैठक पाँचवें कोश--अन्नमई—में है, जो कि सब

से नीचे और बाहर है। और वे पाँचों कोश ये हैं– अन्नमई कोश यानी स्थूल शरीर, प्राण मई कोश, मनोमई कोश और ज्ञान मई कोश, ये तीनों कोश सूक्ष्म शरीर में दाख़िल हैं, और आनन्दमई कोश कारण शरीर कहलाता हैं, और चौथा जीव साक्षी यानी तुरिया पद है। कारण को प्राग, और सूक्ष्म को तेजस और स्थूल को विश्व कहते हैं॥

१५––अब ख़्याल करो कि पाँच कोश यानी तीनों शरीरों के अन्दर मनुष्य का निज रूप यानी आत्मा पोशीदा है। और जब तक इन इन कोशों या शरीरों यानी ग़िलाफ़ों को, अभ्यास करके, नहीं छेदेगा, तब तक अपने स्वरूप यानी आत्मा का दर्शन नहीं पावेगा। ये सब ग़िलाफ़ पिंड में हैं, जो कि मलीन माया का देश है और जिसकी हद छः चक्रों में है। इसी तरह ब्रह्मांड में, जहाँ कि शुद्ध माया है, ब्रह्म के भी चार स्वरूप हैं–एक वैराट यानी माया सबल ब्रह्म जो माया से मिल कर रचना कर रहा है, दूसरा हिरण्य-गर्भ जो माया सबल को मदद दे रहा है और जहाँ से सूक्ष्म मसाला रचना का प्रकट हुआ, और तीसरा अव्याकृत जहाँ से बीज रूप माया ज़ाहिर हुई, और चौथा शुद्ध ब्रह्म है। जब इन सब ग़िलाफ़ों को, अभ्यास की मदद से तोड़ कर, पार जावे, तब शुद्ध ब्रह्म से मेला होवे और वहाँ जो बचन सच्चे ज्ञानियों और योगेश्वरों ने एकताई के कहे हैं, सब सहो और दुरुस्त मालूम पड़ेंगे। और कोई बिना अभ्यास किये हुए, नीचे के देश में, चाहे शुद्ध माया

होवे चाहे मलीन, उन बचनों को सुन कर और पढ़ कर, अपने तईं शुद्ध ब्रह्म स्वरूप मानता है, तो यह बड़ी ग़लती है। और देखने में आता है कि ऐसे कहने वालों की हालत बिलकुल नहीं बदलती। यानी उनके स्वभाव और आदत, मुआफ़िक़ संसारी जीवों के हैं, और मन और इन्द्रियाँ उन पर सवार रहते हैं, और मेलों और तमाशों और शहरों और क़सबों में उनको नचाते रहते हैं। क्या ब्रह्म या आत्मा-आनन्द में इस क़दर गति भी नहीं कि जो एक स्थान पर ठहर कर अपने अन्तर में रस लेकर शान्ति हासिल करें ?

१६—यह बात भी ग़ौर करने के लायक़ है कि जो चैतन्य सर्व-व्यापक है, वह सब जगह माया के खोलों में, चाहे वे भारी हैं या हल्के, ढका हुआ है। और इस में जो मलीन माया का स्थान है, वह व्यापक चैतन्य बहुत भारी खोलों में छिप रहा है, और इस सबब से उसकी ताक़त भी गुप्त है। अब, जब तक कि विशेष चैतन्य की, जिस पर कि खोल हलके हैं, मदद न पहुँचे, तब तक यह व्यापक चैतन्य कुछ कार्रवाई नहीं कर सकता है, और अचेत पड़ा हुआ है। इसका नमूना इसी लोक में जाहिर है, यानी जो व्यापक चैतन्य इस लोक में मौजूद है, वह आप कुछ काम नहीं कर सकता, जब तक कि विशेष सूरज के चैतन्य की धार, किरनियों के वसीले से, इस अचेत चैतन्य को ताक़त देकर न जगावे। इसी तरह ऊपर और नीचे के लोकों का हाल समझ लो। महा-विशेष चैतन्य वह है कि जो बिल्कुल बे-पर्दा

और बे-खोल है, जिसको निर्मल और निर्माया चैतन्य कहना चाहिए। ऐसे देश में पहुँच कर, जीव-चैतन्य जिसको संत, सुरत कहते हैं, ग़लाफ़ां यानी देहियों के बंधन से छूट कर, अपने अमर और पूर्ण आनन्द स्वरूप को प्राप्त होगा। और जन्म-मरण और काल-क्लेश और देहियों के साथ के दुख-सुख के फंदे सब कट जावेंगे और बिल्कुल दूर हो जावेंगे ॥

१७–संत उस रास्ते का, और एक से एक विशेष चैतन्य के मंडलों का, और फिर महा विशेष चैतन्य के धुर मंडल तक का भेद बताते हैं, और फ़रमाते हैं कि जिस डोरी या धार पर कि सुरत-चैतन्य उतरी है (क्योंकि कुल्ल रचना धारों की है, चाहे वे धारें सूक्ष्म हैं या स्थूल और चाहे वे नज़र आवें या नहीं) उसी डोरी या धार को पकड़ कर अपने निज देश में उलट कर जा सकती हैं। और मालूम होवे कि महा विशेष चैतन्य के मंडल के नीचे जिस क़दर रचना कि निर्माया और शुद्ध माया और मलीन माया के देश में हुई, वह उस धार ने करी जो महा विशेष चैतन्य के मंडल के नीचे की तरफ़ से निकली, और फिर किसी क़दर फ़ासले पर ठहरती हुई, और मंडल बाँध कर रचना करती हुई चली आई है। फिर वही धार, जिसको सुरत कहते हैं, और पिंड में उतर कर जाग्रत अवस्था में जिसका नेत्रों में वासा है, संतों की दया से, उनकी जुगत यानी सुरत-शब्द योग की कमाई करके अपने निज देश में, पिंड और ब्रह्मांड के परे उलट कर, जा सकती है, और वहाँ

पहुँच कर जन्म-मरण और दुख-सुख से सच्ची रिहाई हासिल कर सकती है। इसी का नाम सच्चा उद्धार है। और जब तक कोई भेद लेकर और अभ्यास करके, घर की तरफ़ नहीं उलटेगा, तब तक ख़ाली बातें बनाने से उद्धार होना किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। इसी सबब से वाचक ज्ञानी और सूफ़ी ख़ाली रह गये और पार-ब्रह्म पद तक, कि जो ब्रह्मांड में है, न पहुँचे। और संतों का देश तो एक दर्जे उसके ऊपर रहा, जिसका भेद और पता योगी और योगेश्वर ज्ञानियों को नहीं मिला। उसका हाल सिर्फ़ संतों ने प्रकट किया। और जो कोई उनकी शरण लेकर चलना चाहे, वह उनकी दया से, उनकी युक्ति की कमाई करके, पहुँच सकता है॥